5175

सोमसी

tharahkardu.in

Scanned with CamScanner

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 1 | अप्रैल, 1975 | अंक 2

प्रबन्ध-सम्पादक
एच० सी० पराशर

सम्पादक
डॉ० बंशी राम शर्मा

परामर्श-मण्डल

1. आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा
2. श्री खेम राज गुप्त
3. श्री हरि राम जसटा
4. श्री मोलू राम ठाकुर

सहयोगी
सरोज शर्मा

[redacted]

[redacted]

प्राप्ति-स्थान—
हिमाचल कला–संस्कृति–भाषा अकादमी, परिमहल,
शिमला-171009

Scanned with CamScanner

सोमसी

वर्ष 1 अंक 2

जनवरी, अप्रेल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य ।

लेखकों के विचारों तथा दिये गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

प्रकाशित रचनाओं को उद्धृत करने के लिये सचिव, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-9 की अनुमति अनिवार्य है ।

वार्षिक चन्दा —12 रु0
इस अंक का मूल्य—3 रु0 मात्र

संकेतिका

1. सम्पादकीय (iii)
2. हिमाचली भाषा-सर्वेक्षण का महत्व ... 1
—डा0 श्याम लाल डोगरा
3. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : जीवन और व्यक्तित्व .. 9
—डा0 पीयूष गुलेरी
4. हिमाचल प्रदेश के लोक-वाद्यों का वर्गीकरण .. 40
—रामदयाल 'नीरज'
5. हिमाचल-ललित-कलाओं के पारखी .. 52
—डा0 नीलमणि उपाध्याय
6. सुकेती का जीवावशेष उद्यान .. 66
—कैलाश भारद्वाज
7. कालिदास के ग्रन्थों में हिमालय-वर्णन .. 71
—कु0 सरोज शर्मा
8. हिमाचली कहावतों में बालक .. 75
—राजन्य जय सिंह
9. विविधा .. 79
10. हिमाचली वास्तुकला की वाङ्मय सूची .. 85
—कु0 भुवनश्वरी राठौड़
11. अकादमी की गतिविधियां .. 97
12. पुस्तक समीक्षा .. 99

सम्पादकीय

मानव जाति का इतिहास उन्नति की एक आश्चर्यजनक कथा है। मनुष्य में खोज करने तथा सीखने की अपार शक्ति है । आदिम मनुष्य, जिसके लिये न तो लिखाई-पढ़ाई का कोई प्रबन्ध था और न ही दूसरों से सीखने-नकल करने के इतने अधिक अवसर थे, ने जंगली घासों से अनाज विकसित किये और उन्हें बंजर भूमि पर उगाना आरम्भ कर दिया । औजारों के आविष्कार किये गए तथा आत्म-सुख और सौन्दर्यानुभूति के विकास हेतु संगीत, नाटक, सुन्दर पदार्थों तथा ललित कलाओं का विकास हुआ । हमारे परिवेश को परिवर्तित करने में जिन अदृश्य शक्तियों का विध्वंसक एवम् पोषक के रूप में हाथ समझा गया, उन्हें भूत-प्रेतों तथा देवी-देवताओं की संज्ञा दी ई । अपने आप को अमर रखने के लिये आदिमानव ने गुफाओं में अपने दैनिक जीवन से सम्बन्धित चित्र बनाये । पहाड़ों की चोटियों पर मृतकों के नाम पर चबूतरे खड़े किये जाने लगे । देवी–देवताओं की मूर्तियां बनाई गई । सामाजिक व्यवस्था को दीर्घजीवी तथा सुदृढ़ बनाने के लिये अनेक संस्कारों तथा प्रथाओं को दैनिक जीवन में सम्मिलित किया गया ।

Scanned with CamScanner

अपने विचारों को विकसित तथा सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से मानव ने विविध वस्तुओं के नामकरण की आवश्यकता समझी । कुछ शब्दों का उच्चारण करने के लिये जीभ तथा सम्बन्धित मांस-पेशियों को अभ्यस्त किया गया तथा क्रिया-पदों का आविष्कार हुआ। भाषा प्रतीकों का समूह बन गई और आवश्यकतानुसार उसके शब्द-भण्डार को विकसित किया गया, नए रूप व प्रकार सामने आए। नैतिक मूल्य तथा सामाजिक नियम आवश्यकतानुसार बदलते गए और मानव अपने परिवेश तथा पूर्वजों से संस्कृति-रूपी धरोहर को प्राप्त करके विकसित करता रहा ।

वर्तमान युग में हमारे आस-पास लिखित अथवा अलिखित लोक-व्यवहार में इतना कुछ अधिक बिखरा पड़ा है कि जहां उसे संरक्षित करने की आवश्यकता है वहां उसके मूल रूप के स्रोतों की भी सतत खोज की जानी अपेक्षित है । विभिन्न विचार-धाराओं तथा सांस्कृतिक प्रकारों ने समय-समय पर एक दूसरे को प्रभावित किया है और सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन हुए हैं । अति प्राचीन काल से हमारे समाज में जो कुछ सुरक्षित रह सका है उसके लिये हमारा भौगोलिक परिवेश भी योगदान देता चला आया है । आज की सभ्यता में जिसे 'आदिम' कहा जाता है वह प्राचीन है, विशुद्ध है और अत्यन्त मूल्यवान है ।

पहाड़ी भाषा हमारी संस्कृति की भांति ही प्राचीन है । डा0 ग्रियर्सन ने इसे आर्यों की प्राचीनतम शाखा के साथ सम्बद्ध माना है । प्रदेश की सांस्कृतिक परतों ने भाषा-भण्डार में अनेक प्रकार से वृद्धि की है । अपनी भाषा के वाक्य-विन्यास, क्रियापदों तथा शब्द-भण्डार का अध्ययन रोचक होत है । इससे हमारी प्राचीन संस्कृति का अध्ययन भी सम्भव है । पर्वतीय संस्कृति अनेक रूपों से विशिष्ट है । हमारे त्यौहार व मेले, देवी-देवता, भूत-प्रेतों तथा अन्य अदृश्य शक्तियों में विश्वास, जन्म, विवाह तथा मृत्यु के संस्कार, लोक-गीत, लोक कथायें तथा सामाजिक मान्यतायें आदि सभी बातें हमारी सांस्कृतिक विशिष्टता को पुष्ट करती हैं । सांस्कृतिक मूल्यों को श्रेष्ठ और हीन के वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता। अतः यह निर्विवाद है कि जो सामाजिक मूल्य समय-समय पर प्रचलित रहे हैं वे तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं के उपयुक्त तथा अनुरूप थे । वर्तमान समय में द्रुतगति से विलुप्त होते हुए सांस्कृतिक मूल्यों के अध्ययन हेतु प्रयत्न करना मानव-सेवा का महान् कार्य कहा जाएगा ।

सोमसी पर्वतीय कला, संस्कृति तथा भाषा के संरक्षण एवम् पोषण के उद्देश्य से प्रकाश में आई है । इसके प्रवेशाङ्क का विद्वान पाठकों ने जिस उत्साह तथा सहृदयता से स्वागत किया है उससे हमें अपने प्रयास के प्रति आस्था तथा आशा का सम्बल प्राप्त हुआ है । पत्रिका के इस अंक को पाठकों तक पहुंचाने में जो बिलम्ब हुआ है उसके लिये अनेक असम्भावित कारण रहे हैं, इस असुविधाके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं ।

हिमाचली भाषा-सर्वेक्षण का महत्व

—डा0 श्याम लाल डोगरा

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥ 1.4

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में शब्दज्योति को विशेष महत्व दिया है । उनका कहना है कि—ये तीनों लोक घोर अन्धकारमय हो जाएं, सब व्यवहार लुप्त हो जाएं यदि शब्दरूपी ज्योति सृष्टिकाल से अपना प्रकाश निरन्तर न फैलाती रहे । सामाजिक व्यवहार में आदान-प्रदान द्वारा वाणी के प्रसाद का महत्व दर्शाया गया है । यदि कोई अपने प्रदेश के शब्द-भण्डार का उपयोग न करे तो वह अपनों में पराया और दूर होता चला जाएगा । अपने आप को समझना समझाना कठिन हो जाएगा । कभी कभी यह कहना ठीक भी है कि—शब्द-भण्डार की क्या आवश्यकता है ! व्यवहार तो इंगित से भी हो सकता है । अंजलि बांध कर मुंह से लगाने से तथा आ आ अव्यक्त ध्वनि का व्यवहार करने से पानी पीने का अभिप्राय प्रायः समस्त संसार में जहां भी जाएं—प्रकट हो सकता है परन्तु ठण्डा पानी, गर्म पानी, लस्सी, दूध, शरबत, चाय आदि पेय रसों को कौन इंगित से समझ और समझा सकता है ! इनके लिये तो शब्दरूपी ज्योति के प्रकाश का ही आश्रय लेना पड़ेगा । भारत-तिब्बत मार्ग पर यात्रा करते समय यदि हम हेलिकाप्टर की सुविधा प्राप्त करें या मोटरकार में बन्द हो कर अपने गन्तव्य स्थान पर भले ही पहुंच जाएं, दूर क्षितिज कितना ही नयनाभिराम लगे परन्तु पदयात्रा में सर्पाकार पगडण्डियां, कल कल रव-पूर्ण स्रोत, शान्त, कहीं क्षिप्र नद, नदियां, शस्य-श्यामला, उर्वरा, कहीं कठोर केदार मार्गाकुला धरती और उस पर समूर्त हाव-भाव, स्निग्ध, तरल, गम्भीर, सुकोमला और सुरीली वाणी का आनन्द तो प्रकृति प्रिय जिज्ञासु ही ले सकता है ।

शब्द-ब्रह्म के उपासक को यहां से कांगड़ी, बस यहां तक मण्डयाली, उधर से कुलुई और कुछ आगे से लाहूली आदि आदि बोली सीमा के वाद-विवाद तनिक अखरेंगे क्योंकि वह जनगणना का अधिकारी नहीं बनना चाहेगा । उसे पूर्व में गढ़वाली, उत्तर में भोट भाषा, दक्षिण में हिन्दी, पश्चिम में पंजाबी—इस परिधि से निकल कर शब्द-ब्रह्म की अनेकता तो पूर्व अवश्य मिलेगी परन्तु उस अनेकता में एकता छपी नहीं है—ऐसा आभास होगा और ऐतिहासिक गवेषणा में आनन्द मिलेगा । ध्वनि शास्त्री के लिये एक एक ध्वनि का महत्त्व है । यदि शब्द अर्थ-परिवर्तन की दिशा में है तो ध्वनि-परिवर्तन की दिशा भी मिलेगी । धन का अर्थ 'रुपया, पैसा, सम्पत्ति' अधिक व्यवहार में है ।

tharahkardu.in
Scanned with CamScanner

कोगड़ी में त/न् 'गाय, बैल आदि पालतू पशु' चम्बयाली में द/ण 'भेड़ बकरियों का समुदाय, है । इनके पालक के लिये चम्बयाली में गद्दी और कुलुई सिराजी में धनोलू शब्द है । लाक्षणिक अर्थ के साथ तान में स्वर के अवरोह तथा आरोह आदि ध्वनि-विशेषताओं का अध्ययन हिमाचली बोलियों में महत्वपूर्ण है । डा0 सिद्धेश्वर वर्मा जी के विचार[1] के अनुसार ऐसे शब्द अतीत की कल्पना लिए हुए हैं । यह शब्द-भण्डार गवेषणा और निदर्शन की प्रतीक्षा में हैं । इससे ज्ञान की अनेक दिशाओं में प्रकाश मिल सकता है ।

१. ऐतिहासिक महत्व

हिमाचल प्रदेश में पौराणिक धारा के साथ साथ बौद्ध–धारा अक्षुण्ण रूप में बह रही है । देवी का माहात्म्य-कथन और पूजा गांव गांव में होती है । ज्वालामुखी की भेंटें अकबरकालीन इतिहास की घटना प्रस्तुत करती हैं । रिवालसर, मणिकर्ण आदि तीर्थों में स्थित बौद्धमन्दिर अपना इतिहास लिये हुए हैं । इन धाराओं में अनेक प्राचीन शब्द सुरक्षित हैं जो प्रदेश के इतिहास की झलक दिखाते हैं । प्रचलित बोलियों में इन शब्दों का प्रयोग दैनिक व्यवहार में नाममात्र है परन्तु लोकगीतों की धुन में इनका प्रयोग अधिक मिलेगा । इसी भान्ति प्रादेशिक संगीत में चैत्र मास में गाये जाने वाले रली के गीतों के पात्र, वस्तु, रली, संकर की कथा प्रदेश की संस्कृति की झलक दर्शाती हैं । स्थान-स्थान में सुनाई जाने वाली वीरों की गाथाएं महत्वपूर्ण हैं । पर्वत की चोटियों और समतल पर बनाए गये राजप्रासाद और टीलों पर बने स्मारक अपने अपने काल की गाथा सुनाते हैं । राजाओं, वीर सैनिकों, गुग्गा, सिद्ध, नाथ आदि की गाथाओं और चमत्कारों का वर्णन मधुर ध्वनि में प्रस्तुत किया जाता है । इन ध्वनियों से पूर्ण शब्दावली का अध्ययन महत्वपूर्ण है ।

२. साहित्यिक महत्व

यह कहना कहां तक संगत है—कि जो भाषा या बोली लिपि-बद्ध नहीं है—उसका साहित्य सुलभ नहीं है । भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से इस भ्रान्ति का निराकरण होता है । लोक-साहित्य का क्षेत्र कितना विस्तृत है । हिमाचल में बांसुरी की धुन में गाए जाने वाले चंचलो और कूंजू के गीत, बालो के आलाप, बदाम रंगी गंगी के प्रेमगीत, गम्हरी तथा अनेकों अन्य गीत प्रेम-काव्य की अद्भुत छटा प्रस्तुत करते हैं ।

दादी मां की सुनाई जाने वाली राम-राज्य से लेकर इस युग के राजा, वीर, सन्त, महात्मा, गुरू, चेल्ले, भलमाणस, गुआरों आदि की रोचक कहानियों से कथा साहित्य भरपूर है ।

नाटी, रास, भगत, रामलीला, होली तथा अन्य उत्सवों में प्रस्तुत झांकियां, स्वांग और उनके सम्वाद नाट्य-शास्त्र के फुटकल नृत्यगीतों की परम्परा लिये हुए हैं । वादक वृन्द अपने साज बाज से अपने शब्दों में ही प्रस्तुत है । तुरही, नरसिंगा, करनाल, पीपणी, मुरली, गणगोजू, छुणछुणू, घंगरू, घण्टी, घण्ट्याल, डमरू, ढोलरू, नगारा, डफला आदि सदियों से मनोरंजन के साधन हैं । अब इनका स्थान धीरे-धीरे अंग्रेजी बाज्जा 'बिगुल बाजा' ले रहा है ।

1. इमिजरी इन् नार्थ-वेस्ट हिमालयन इन्दो-आर्यन लैंग्वेजिज, पृ0 326, प्रतिदाम्म् हेग, 1968.

३. सांस्कृतिक महत्व

भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन से इन बोलियों में निहित संस्कृति के शब्द–भण्डार का उपयोग महत्वपूर्ण है । दूर-दूर की छोटी-छोटी बस्तियां अपना राग अलापती हैं । मधुर, गम्भीर ध्वनि में उच्चरित शब्दों का संग्रह कितना महत्वपूर्ण हो सकता है । कृषि प्रधान प्रदेश में किरसान और पाहू अपने हाली बल्द दर्शाते हैं । सांगा, जुंगला, मई, उक्खल, मूल आदि उनके उपकरण हैं । कुलथ, घण्डयाली, कचालू, आल्लू, छल्ली, कुकड़ी, चोल अन्न विशेष हैं । सेऊं, काकड़ी, दाड़ू, गोहड़े, किम्ब, अम्ब, सनाफ़ल आदि सदा बहार के फल हैं । डान्नी, पेट्ठा, घेओ–घण्डोली, क्यूं, चरेली, भुज्जू आदि व्यन्जन हैं । छेल्लू, गा, बच्छी, कट्टी के लिये सुक्का घा और पतराह उनकी गोहरन, ओड़ी या घराल में रखा होता है ।

पुरोहित जी के साथ बातचीत में हमें ये महत्वपूर्ण शब्द मिलेंगे:–
नछत्र, बार, महूर्त, परतिट्ठया, अछत्, कड़माई, समूहत, तेलतलाई, मनेई, तुआक, ब्याह, गकलोआ, जणेत, जणेतड़ आदि ।

पुष्पों के नाम मिलेंगे––तग्गर, गट्ट, त्यूर, गन्यारा, बसूट्टी, खटनालू आदि ।

पत्ती, पोत्थी, निरस, चण्याट्ठी, संज, छूच्छी, संख, अर्घ, कुसा, पवित्ती, मोटक आदि पुरोहित जी के उपकरण हैं ।

कुटुम्ब में बताएंगे—बुहडा–बाप्पू-जबरा, अम्मा- जबरी, ताऊ, चाच्चा, भाऊ, बू, बुआई मसेर, मलेर, सस्स-जी, सोहरा, लाड़ी, लाड़ा, द्राणी, जठाणी, जठुत्तर, द्रुत्तर, पतरौहरा, कुड़म आदि ।

यदि बोट्टी (पाचक) के साथ भेंट करें तो स्वाद मिलेगा:—

मधरा, रैण्टा, पलधा, ऐंकलू, भटूरू, मिस्सी-किस्सी, बेहड़ी छलियां दी रोट्टी, खोहरू, रेहड़ू, कहड़ू आदि जो प्रायः भोजन के समय नुहारी–दतयालू (प्रातराश) कलार–बतौहरी (मध्यान्ह भोजन) और संझयालू–ब्याली (संध्याकालीन भोज) में दिये जाते हैं । अनेक संयोग ब्यह में धाम, छोड़, भड़ूआ के अवसर पर होते हैं ।

नाई का काम घोट, से के अतिरिक्त लाग लेना होता है । सन्यार की शोभा चक्क, फुल्ली, बालू, गूट्ठी, छाप, कोक्के में है ।

सोईं की सिलाई में कुर्तू––झग्गू, सुथणू, घगरी, कच्छा, गोच्छा, फालडू, खिन्द, खन्दोल्लू, लेहफ आदि की प्रधानता है ।

तरखाण की दक्षता दुआरी, भित्त, चोहब्बू, तल्लड़, छप्पर, छन्न, सैल, खपरैल आदि निर्माण-कला में मिलती है ।

मकान बनाने वाला चणेढा बताएगा—उआन, ओबरी, कन्ध, माहिपोस, अटली, बीह आदि ।

ठठ्यार धातु के बरतन दिखाएगा–चरोट्टू, भड्डू, मट्ट, तमेहड़ा, गड़वी, तास्क आदि ।
लुहार के उपकरण हैं— द्राट, द्राट्टी, जाड़ी, कुदाली, तैन्थू, संसी आदि ।

Scanned with CamScanner

कुम्हार के धोमा में मिलेंगे—हण्डू, पारू, दघून्नू, घड़ोल्लू आदि बरड़, और डूमणा दिखाएंगे — छुन्ने, छज्ज, टोकरू, डल्ल, छड़, छिक्कू, करंडी, पेड़ू आदि ।

पैरों में पहनने के लिये मिलेंगे— जोड़ा, जुट्टा, पहुणी, पूल्ला आदि ।

वैद्य जी के साथ बात चीत में अंग–वर्णन इस प्रकार है—

खोप्पर, मुण्ड, थोब्बड़, न्हास, हास, कन्न, डेल्ला, खाख, छून्नी, क्याड़ी, पिट्ठ, पट्ट पेच, बांह, आरक, मून्ना आदि ।

प्रायः रोग होंगे—टुम्ब, सूल, पात, तिय्या, बड्डा ताप, सन्न, जखाम, सीत, तुआड़ आदि । जो रोग वैद्य के वश का न हो उसे चेल्ला ठीक करता है । उसे रोग न कहकर ओपरा, ओपरे दी मार, टूणा टेस्सा, खोट, छल्हेड्डा आदि सींड से सुनकर बताया जाता है ।

नदी पार करते समय द्रेंई और झीर मिलते हैं । झीर के काम कूहल, घराट, गरड़, दरड़ा, बट्ट आदि संभालने का होता है । द्रेंई का व्यवसाय नदी पार कराना होता है, साधन हैं—बेड़ी, खटनाऊ, गाहण, चप्पू, नाहल आदि । नदी पार करा वह 'बोलबाले बक्षियां दे' जयकार से मस्ती लेता है ।

जलाशय—नौण, बौड़ी, खड्ड, आल के पास ग्वालू अपने धन-माल-गा, छेल्लू, बलद, वेहड़ी, वैहड़ू, के साथ मुरली की धुन बजाता मिलता है ।

देव परिवार में देवी देवताओं के प्रसिद्ध मन्दिरों के अतिरिक्त नाग, बासिआ आला, सिद्ध, पहाड़िया, गुग्गा, नारसिंग, परियां, पीर आदि कुल देवताओं की नाम-महिमा गायी जाती है।

४. भौगोलिक महत्व

भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन में जिज्ञासु को नदी, घाटियों की रम्य-स्थलियों में विहार करने में ये शब्द मिलेंगे :–

धूर, रिहड़ू, भेठ, छम्ब, टिल्ला, कुआल, नदी, नाल, नालू, छल्हड़ू, छहरा आदि ।

जन्तुओं में मिरग, सूर, गिद्दड़, फोक्की, सेहडू, खुन्दला, सैहल, खड़पा, सर्प, धाम्मण, तथा पंखेरू कण्डू, चिन्चड़, मकोड़ी, धरमोड़ी, रंगड़, भकनोली, सुखी, बुड्डू और वण के पंछी–तित्तर, कुक्कड़, चोटी पींजा, मोर, बोद्दड़, मरगाब्बी, सिकरा, लमकाह आदि हैं ।

वेल बूटे अगणित हैं—ब्यूहल, कराल, घनीरा, बसूहटी, ट्रेक, सिम्मल, नाल, बैंहज, चील, टोर आदि वृक्ष हैं ।

(५) खगोलिक महत्व

रित अपना रंग लाती है । प्रायः मुख्य ऋतुयें हैं–तोन्दी (ग्रीष्म), बरखा तथा ह्यून्द स्याल । ग्यामा-दोता (प्रातः) तकालां, आता (अर्धरात्रि) काल वाचक शब्दों में प्रमुख हैं । स्याल में सूरज, तोन्दी में चंद्रमा-लोरी मामा, चान्दणी, तारे तथा बरसात में बरखा, बिज्ज, आहूण, गड़ाक्का, द्राड़, अम्बर का वर्णन मिलता है।

(६) सामाजिक महत्व

समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों में बोली एक स्थान की होकर भी भिन्न रूप ग्रहण करती है ।

शिष्ट व्यवहार में जी, तुसां, चला, ओग्रा आदि में बहुवचन के प्रयोग मिलते हैं ।

सामान्य व्यवहार में, ओ, अड़ेआ, अड़ीए, नी, मतू, ए, एई, एऊ, हो, आदि सम्बोधक हैं ।

सामान्यतया जो क्षेत्र बाहरी प्रभाव से मुक्त हैं, प्रमुख नगर से दूर हैं, तथा यातायात के साधन न होने से दुर्गम हैं जैसे–वन, पर्वत घाटी वाले क्षेत्र–इनमें प्राचीन रूप सुरक्षित हैं जिन्हें तत्सम, तद्भव, देशज की श्रेणी में लाया जाता है ।

(1) तत्सम

धार्मिक परम्परा तथा अन्य सामाजिक और नैतिक व्यवहार में अनेक शब्द सदियों से एकरूप चले आ रहे हैं :–

पूजा, पाठ, व्रत, कथा, गुरू, मन्त्र आदि ।

अन्य हैं–अंग, रंग, भंग, सुख, दुख, कलंक, नरक, अम्बर, चन्द्रमा, तारा, अस्त आदि ।

(2) तद्भव

व्यवहार में तद्भव शब्दों की संख्या भी अधिक है :–

चक्कर, छतरी, जग्ग, जोग, जंतर, जतन, ग्रां, गार (अंगार), सूरज, किरपा, छमा, भाखा, बण आदि ।

तुलनात्मक अध्ययन में इन शब्दों का विशेष महत्व है । कई शब्द संस्कृत में न होकर वैदिक भाषा में मिलते हैं:—

कांगड़ी में कू, कुह, वैदिक—कुह

कुतु, संस्कृत-कुतः,

कुलुई और कोटगढ़ी में हिज 'पिछलाकल', संस्कृत-ह्यः, बारेली, संस्कृत-बिडाली

कोटगढी, सिरमौरी में आशू, कुलुई-आरशू, मण्डयाली-आंझू, बिलासपुरी-आंजू तद्भव संस्कृत अश्रु के व्यवहार में हैं ।

इसी भान्ति संस्कृत मूषिक, सिरमौर, महासू तथा कुल्लू में मुशा और मण्डी तथा कांगड़ा में-मूसा बोलचाल में है। संस्कृत सः, अहम् हिमाचली बोलियों में सः, सेह अऊं, हऊं तनिक उच्चारण भेद के साथ बोले जाते हैं ।

इस भांति ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान में हिमाचली बोलियों के शब्द-संग्रह का विशेष महत्व है ।

(3) देशज

परदेसी को देशी शब्द व्याकुल कर देने वाले हैं जो कि घरेलू वातावरण में प्रयक्त

Scanned with CamScanner

होते हैं यथा—

नो, मतू (सम्बोधक) माठू, माठी (कन्या) कुम्राल, लोहणा, गोहणा, ढीम्मा, फिल्ह, झड़ा, जड़ा आदि ।

(4) विदेशज

सांस्कृतिक आदान-प्रदान में बाहरी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है । अनेक विदेशी शब्द व्यवहार में आ रहे हैं—

कताब, जमानत, मकदमा, जरूर, जुल्फ, जोर, छुट्टी, डेरा, नमून्ना, हर्ज, कोट, रासन, कार्ट, इंजण, मोटर, सिनमा, रेडियो, बोट, मैम्बर, सैम्बली आदि तनिक उच्चारण–भेद से ।

(७) ध्वनि-महत्व

दिशा में बोली बदलती जाती है । उच्चारण विविधता आती जाती है । कई ध्वनियां जो एक क्षेत्र में नहीं मिलती हैं दूसरे क्षेत्र में पाई जाती है—

(1) ल उत्क्षिप्त ध्वनि का व्यवहार हिमाचली बोलियों में मिलता है—

लाल 'मुखलेश' तुलना में लाल 'रंग विशेष' गल 'गला, कण्ठ' तुलना में गल 'बात'।

(2 कांगड़ी में श के स्थान पर स का व्यवहार है--

सिव, संकर, सान्ति, सस्स आदि ।

कुलूई, सिरमौरी, कोटगढ़ी आदि में श का व्यवहार अधिक है—

शाशू (सास), आशू (आंसू) आदि ।

(3) ह ध्वनि कहीं तान में लीन हो गई और कहीं लुप्त है—

होणा का उच्चारण ओणा है ।

हऊं-अऊं-आं ये प्रयोग मिलते हैं ।

(4) य आदि-स्थिति में प्रायः लुप्त है—

याद के स्थान में आद ।

कहीं य का परिवर्तन ज में है—।

जाद–'याद', जात्रा–'यात्रा'।

(5) वर्ण–विपर्यय

प्रत्यय–संयोग से ध्वनि परिवर्तन के उदाहरण ही मिलते हैं । डुआ 'उडा', ठुआ–'उठा', दुआस--'उदास' आदि ।

इस भांति हिमाचली बोलियों में ध्वनि-शास्त्र की दृष्टि से अनेक विधाएं हैं जिनका

वर्णन इस लेख में विस्तारपूर्वक देना सीमा से बाहर है ।

(८) कोश-महत्व

कोश-गत महत्व में हिमाचली बोलियों का शब्द-भण्डार अनुपम है । एक बोली में बहुप्रचलित शब्द के साथ अपना शब्द भी व्यवहार में है । कतिपय उदाहरण हिन्दी-हिमाचली, अनन्तिम शब्दावली (1970) से उद्धृत हैं:—

हिन्दी	सिरमौर	महासू	कुल्लू	मण्डी	बिलासपुर	कांगड़ा	चम्बा	पृष्ठ स0
छिलका	शेकड़ा	शेटका	शेकटा	छिलका	सिटक	सिक्कड़	सिक्कड़	21
जाड़ा	शेलो	शैड़ौ	शेला	सेला	सीत	स्याल	हयून्द	23
तरकारी	लायण	बुलका	भाजी	मर्होलण	सलूणा	न्योड़ा	टुखुणु	28
सफेद	धौला	शेता	शुकला	सपेद	चिट्टा	चिट्टा	हच्छा	74
खांसना	ढांसणा	खूंगणा	खूंगणा	खांगणा	खंगणा	खंगणा	खुखणु	76
जल्दी	शीगा	शीघ्री	छेकै	झट	छोड़	सताब्बी	छोड़,तौले	93

यह शब्द–संग्रह भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में महत्वपूर्ण है। आशा है यह योजना शीघ्र विस्तृत रूप में अनुसन्धानकर्ताओं के समक्ष आएगी ।

(९) पारस्परिक महत्व

प्रस्तुत विधाओं से हिमाचली बोलियों का अध्ययन महत्वपूर्ण है । इन बोलियों में कतिपय अपनी विशेषताएं हैं जो समीपवर्ती वर्ग में अपना प्रभाव न ला सकी हैं परन्तु एक दूसरे के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक बनी हैं ।

परिवर्तन होने पर भी एक ऐसी कड़ी है जो टूटती नहीं है । व्यवसाय तथा स्थान–भेद के कारण व्यक्ति वाग्–व्यवहार में परिवर्तन ला सकता है परन्तु जब वह अपने कुटुम्ब में बातचीत करता है तो इस परिवर्तन को भूल जाता है और कुछ ही क्षणों में अपनी उच्चारण शैली अपना लेता है । सहजभाव में बातचीत करने के कारण उसे कोई कठिनता अनुभव नहीं होती है जैसे कि उसे अन्य भाषा या बोली के व्यवहार में साव-धानता तथा विचार-शीलता का अनुभव करना पड़ता है ।

व्यक्तिगत उच्चारण में अन्तर होता है परन्तु समष्टिगत व्यवहार में यह अन्तर नगण्य हो जाता है जिससे भिन्नता का आभास नहीं होता है । व्यावहारिक दृष्टि में वक्ता और श्रोता सहजभाव में एक दूसरे को समझने का यत्न करते हैं ।

हिमाचली बोलियों में उच्चारण भेद पाया जाता है । पद–रचना में भी परिवर्तन कहीं कहीं है । शब्दावली में भी रूप–भेद है परन्तु इन सब भेदों को मिटाने वाली एक सूक्ष्म रेखा भी है । ऐतिहासिक अध्ययन में एक ऐसी कड़ी मिलेगी जो घटकतत्वों में सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होगी । हिमाचली बोलियों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक

Scanned with CamScanner

अध्ययन होना आवश्यक है क्योंकि इन बोलियों में कई घटकतत्व ऐसे हैं जिनमें समानता और भिन्नता के कारण स्पष्ट हैं परन्तु आकस्मिक क्या है तथा आधारभूत क्या है, इसका ज्ञान ऐतिहासिक अध्ययन में ही सुलभ है। इस अध्ययन द्वारा व्यक्ति की भावना तथा मनोवेगों का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा। इसके अतिरिक्त सामाजिक शक्ति, रूढ़ी तथा इतिहास के प्रभाव को भी भाषा वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा पहचानने में सहायता मिलेगी।

—वि0वि0 शोध-संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होश्यारपुर, 14601।

लेखकों से

—सोमसी में केवल पर्वतीय कला-संस्कृति एवम् भाषा के क्षेत्र की सारगर्भित तथा शोधपूर्ण रचनाओं को ही स्थान दिया जाता है। पहाड़ी भाषा के उद्धरणों का भाव सरल हिन्दी में व्यक्त किया जाए तो रचना सुबोध तथा रोचक हो सकती है।

—अन्यत्र प्रकाशित, पठित अथवा प्रसारित रचनाओं को यथावत प्रकाशनार्थ न भेजें तथा इस आशय का प्रमाणपत्र रचना के साथ अवश्य संलग्न करें। रचनाओं में उपरोक्त विषयों पर या तो मौलिक विचार हों अथवा पूर्व प्रकाशित विषय पर नया दृष्टिकोण!

—रचना कागज के एक ओर टंकित अथवा स्वच्छ रूप से लिखी होनी चाहिये।

—अस्वीकृति की दशा में लेखक जिन रचनाओं को वापिस मंगाना चाहते हैं उनके लिए टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।

—स्वीकृत रचनाओं के लिये नियमानुसार पारिश्रमिक रचना के प्रकाशनोपरान्त शीघ्र भेज दिया जाता है।

—सम्पादक

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : जीवन और व्यक्तित्व

—डा0 पीयूष गुलेरी

स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के वंश एवं जीवन-चरित पर प्रकाश डालने से पूर्व उनकी जन्मभूमि गुलेर की स्थापना के सम्बन्ध में कुछ लिखना समीचीन प्रतीत होता है।

त्रिगर्त प्रांत तथा गुलेर राज्य

प्रकृति की सुरम्य-स्थली हिमाचल प्रदेश का कांगड़ा-क्षेत्र प्राचीन काल में त्रिगर्त कहलाता था और जालंधर पीठ में बसा हुआ था वहां के सोमवंशी राजा जब मुलतान छोड़ कर इस पर्वतीय प्रदेश में आए तो अपने साथ पुरोहितों को भी लाए थे, राजा सुशर्मा ने कांगड़ा (त्रिगर्त) में अपना राज्य स्थापित किया [1]। कुछ समय के पश्चात् उनके ही वंशज कांगड़ा के राजा हरिश्चन्द्र आखेट के लिए निकले और चलते चलते दोआबा (कांगड़ा का दक्षिणी भू-भाग जो उस समय सघन वन था) के जंगलों में पहुंचे। वहां एक मृग का पीछा करते हुए वह अपने साथियों से बिछुड़ गए और दुर्भाग्यवश जब उनका अश्व लता-वनस्पतियों से घिरे एक कुंएं को लांघने लगा तो राजा हरिश्चन्द्र उस कुंएं में गिर गए। निर्जन वन में कुछ दिन अपने सवार की प्रतीक्षा कर उसे लौटते हुए न देख वह अश्व अपने माल-असबाब के साथ कांगड़ा लौट गया, उधर राजा हरिश्चन्द्र के साथी और मित्र उनकी तलाश करके जब निराश हो गए तो वे सब यह अशुभ समाचार लेकर राजधानी लौट आए। राजा हरिश्चन्द्र का अनुज कर्मचन्द्र दुख–विह्वल होकर अकुला उठा [2]। राजा हरिश्चन्द्र की सभी रानियां शोक-संतप्त होकर विलाप करती हुई सती हो गईं। भ्रातृ-भक्त कर्मचन्द्र प्रथम तो राजगद्दी पर न बैठे किन्तु कुछ दिन बाद राज्य और प्रजा–सुख की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने राजगद्दी स्वीकार कर ली [3]।

संयोग की बात है कि सत्ताईस दिन के पश्चात् कुछ लबाने[4] उसी कुएं के निकट से गुजरे जिसमें किसी मनुष्य का करुण-क्रन्दन सुनाई दिया। वे सब आश्चर्य–चकित हो उस कूप की ओर बढ़े जिसमें अपने मनोबल से कुटिल काल से संघर्ष करता हुआ राजा हरिश्चन्द्र जीवन-रक्षा के लिए प्रयत्न कर रहा था[5]। उन लबानों ने

(1) देखिए: कवि उत्तम विरचित दलीप रंजनी (हस्तलिखित) पृष्ठ 8 तथा 9।
(2) ——————वही—————— पृष्ठ 53।
(3) (क)——————वही—————— पृष्ठ 53।
(ख) 'Chiefs and Families of Note in Punjab', Sir Lepel, H. Griffin, P. 72-75.
(4) जाति विशेष का नाम, जो प्रायः घूमते-फिरते रहने वाले लोग होते हैं।
(5) देखिए, कवि उत्तम विरचित दलीप रंजनी (हस्तलिखित), पृष्ठ 55।

Scanned with CamScanner

सहृदयतापूर्वक बड़ी सतर्कता से राजा को कुएं से बाहिर निकाला। हरिश्चन्द्र ने उन्हें धन्यवाद दिया और अपने 'देस कांगड़े' में ले जाकर पुरस्कार आदि देने का आग्रह किया।

राजा हरिश्चन्द्र जब कांगड़ा के निकट पहुंचे तो उन्हें रानियों के सती होने का समाचार मिला। समाचार सुनते ही राजा शोकसागर में निमग्न हो गए, उन के मन पर वैराग्य के मेघ मण्डराने लगे। वे पुनः जंगल की ओर चल दिये। जब भाई कर्मचन्द्र को यह सब ज्ञात हुआ तो वे राजगद्दी को त्यागकर अपने भाई-बांधवों तथा गुरुजनों को साथ लेकर राजा हरिश्चन्द्र का मार्ग रोक कर कांगड़ा लौट चलने और राज-काज संम्भालने का आग्रह करने लगे। परन्तु हरिश्चन्द्र ने किसी की भी बात नहीं मानी और अपने अनुज कर्मचन्द्र को कांगड़ा का सुशासन करने का आदेश देकर वहां से चलते बने। वैराग्य-भाव से वे स्थान स्थान पर घूमते रहे और 'हरसर'[1] नामक स्थान पर पहुंचे, जहां उन्होंने कुएं खुदवाए और सड़कें तथा धर्मशालाएं बनवाई। तत्पश्चात् अपने छोटे भाई से विचार-विमर्श करके राजा हरिश्चन्द्र ने वाण गंगा, कुराली और नूयूगल नदियों के संगम पर हरिपुर दुर्ग की स्थापना की[2]।

इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र ने सन् 1420 ई0 में गुलेर राज्य की स्थापना की और हरिपुर को अपनी राजधानी बनाया[3]। बाद में सुविधा के लिए 'नन्दपुर' में भी राज-प्रासादों तथा अन्य भवनों का निर्माण करवाया। हरिपुर और नन्दपुर दोनों स्थानों से प्रान्त की शासन-व्यवस्था चलने लगी। कालान्तर में रियासत गुलेर 'नन्दपुर-गुलेर' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार छोटे भाई ने कांगड़ा और बड़े भाई ने गुलेर राज्य का शासन सम्भाला। राजा हरिश्चन्द्र के बड़ा होने के कारण गुलेर राज्य के नेतृत्व को सब रियासतों ने स्वीकार किया और यह परम्परा गुलेर के अन्तिम राजा बलदेवसिंह तक अक्षुण्ण रही। अंग्रेजी शासन काल में भी गुलेर के राजा को ही प्रथम स्थान प्रदान किया जाता था, गुलेर-राज्य का इतना अधिक सम्मान था कि पर्वतीय राजाओं के

---

(1) हरसर-गुलेर गांव से दक्षिण-पश्चिम की ओर कोई 8 मील दूर स्थित है।

(2) देखिए: उत्तम कवि विरचित दलीप रंजनी, पृष्ठ 62।

(ख) साहित्यिक तीर्थ गुलेर-में मोहन मैत्रेय, धर्मयुग, 10 जनवरी, 1965 ई0, पृष्ठ 11।

(3) निबन्ध रत्नावली, डा0 श्याम सुन्दर दास, भूमिका से-पृष्ठ 11-17।

राज्याभिषेक की प्रथा गुलेर के राजा ही के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ करती थी[1]।

गुलेर का नामकरण

गुलेर राज्य का नामोल्लेख मुस्लिम शासकों के इतिहास में 'ग्वालियर' नाम से प्राप्त होता है और गुलेर शब्द को ग्वालियर का अपभ्रंश माना जाता है। वास्तव में गुलेर की स्थापना ही के साथ गुलेर शब्द के उद्भव और विकास की कहानी जुड़ी हुई है। लोक परम्परानुसार राजा हरिश्चन्द्र कांगड़ा की रानियों के सती होने की मर्मांतक पीड़ा से संतप्त होकर पुनः किसी ऐसे स्थान पर अपनी राजधानी बनाना चाहते थे जहां सत्य, धर्म और न्याय का निवास हो ताकि मानव तथा अन्य पशु-पक्षी निर्विघ्न रूप से एक स्थान पर निवास करें।

जब राजा हरिश्चन्द्र 'छब्ड़' वन में निवास कर रहे थे तब एक

---

(1) "..............और प्रियवर भाई जी.................महाराज गुलेर मण्डी नरेश भवानी सेन दासीपुत्र को गद्दी देणा जावेंगे का0प्र0 9 को इहां से जावेंगे अक्तूबर ता0 31 को गद्दी होवेगी . . . . . . उस जलसे में हमारे ही श्री राजा साहिब हैं। पालमपुर रस्ते जावेंगे मण्डी को अधीर कि तक गुलेर पौंहचेंगे।"
(गुलेर के राजपुरोहित श्री रामलाल द्वारा अपने पितृव्य श्री शिवराम जी महाराज —पं0 चन्द्रधर शर्मा गुलरी के पिता के नाम लिखा पत्र गुलेर सं0 6 आश्विन प्रविष्ठे 30)।

(ख) गुलेर के राजा बलदेव सिंह की वंशावली (राजा हरिश्चन्द्र 1420 ई0)।

गोवर्धन चन्द्र (मृ0 1773)

राजा प्रकाश चन्द्र (मृ0 1820)— | पराक्रम चन्द (मृतक)।

राजा भूप सिंह (मृ0 1826)।

राजा शमशेर सिंह— | राजा जय सिंह (मृ0 1884)

राजा रघुनाथ सिंह (मृ0 1920) | हरदित्त सिंह (मृ0 1900)

राजा बलदेव सिंह (1883—1963) | भगवन्त सिंह | अजीत सिंह

टिक्का नरदेव चन्द्र (जन्म 1922-मृतक)। | नगेन्द्र सिंह | राजेन्द्र सिंह

tharahkardu.in
Scanned with CamScanner

ग्वाले ने एक ऐसे स्थान की ओर संकेत किया जहां बाघ और बकरी एक घाट पर पानी पीते देखे गए थे, राजा ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार सत्य पर अपने दुर्ग की नींव सुदृढ़ करने के लिए उस ग्वाले का बलिदान कर दिया और उसका सिर वहीं गाड़ दिया[1]। इस दुर्ग का नाम हरिपुर दुर्ग है, जिसके भग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं । इस प्रकार गोपाल, ग्वाल का बलिदान दिये जाने के कारण ही इस स्थान का नाम गुलेर पड़ा । जिसे फारसी तवारीखों में ग्वालियर नाम दिया गया है[2] । इन्हीं "गुलेर वंश" के इतिहास के साथ श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के वंशजों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है जो निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं :—

पुरोहित परिवार

त्रिगर्त प्रान्त में आए हुए राजाओं के साथ जो पुरोहित आए थे उनके चार पुत्र हुए और इन्हीं के वंशज आगे चलकर पुरोहितों की चार "मुहियों" (भागों) में विभक्त हुए। ज्येष्ठ पुत्र के भूरे रंग के बहुत ही सुन्दर बाल थे । द्वितीय पुत्र विद्वान और विशिष्ट गुणों से सम्पन्न था । तृतीय अपनी चारित्रिक हीनता के कारण कुख्यात था । कनिष्ठ के जन्मते ही माता का देहान्त हो गया और उसका लालन पालन एक जाटनी के हाथों हुआ, अतः क्रमानुसार चारों भाइयों के परिवारों की क्रमशः भूरू, वशिष्ठ, लुण्ड और जड़ोटिये 'अल्ल'[3], पड़ गई, अन्तिम 'अल्ल' वाले अर्थात् जड़ोटिये पुरोहितों को कालांतर में गुलेर राज्य की ओर से मुआफी में प्रचुर जमीन मिली थी । राजा हरिश्चन्द्र ने गुलेर राज्य की स्थापना के पश्चात् उक्त पुरोहित परिवार को 'जड़ोट' नामक गांव भी जागीर के रूप में दे दिया था। वही पुरोहित अपनी पूर्व प्रचलित 'अल्ल' और जड़ोट जागीर[4] के कारण 'जड़ोटियें, 'जडोटिये' अथवा 'जलोटिये'[5] पुरोहित प्रसिद्ध हुए[6]। जड़ोटिये पुरोहित राज सम्मान प्राप्त धर्म-निष्ट एव सनातन-धर्म अनुयायी थे । वेदों एवं धर्मशास्त्रों के ज्ञाता और ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण थे, ज्योतिष सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान तथा पंचांग-शोधन के कारण दूर-दूर तक इस वंश ने यशोलाभ अर्जन कर लिया था, वाराणसी तथा पटियाला आदि भिन्न भिन्न प्रसिद्ध राज्य-दरबारों और

1. कवि उत्तम विरचित, दलीप रंजनी, पृष्ट 62 ।
2 दे: श्री देवी प्रसाद जी का पं0 चंद्रधर शर्मा गुलेरी के नाम लिखा पत्र, जोधपुर आषाढ़ वदि 2 सं0 1966 ।
3 देशज शब्द जिसका अर्थ वंश या कुल है (देखिए: क्या भूलूं क्या याद करूं ? हरिवंश राय बच्चन, पृ0 13) ।
ख जड़ोटिये पुरोहितों के कुलगुरु आचार्य माधोराम जिनका अक्तूबर, 1970 में 78 वर्ष की आयु में देहान्त हुआ, द्वारा सुनाई गई कहानी ।
4 देखिए स्व0 पं0 चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा दिया गया वंश परिचय, मेयो कालेज अजमेर, गुलेरी जी की पर्सनल फाइल में लगे प्रार्थना-पत्र के साथ संलग्न व्याख्यात्मक वंश-परिचय ।
5 देशज शब्द अपभ्रंश रूप, पहाड़ी में ।
6 बा0 श्याम सुन्दर दास (प्रस्तावना), निबन्ध रत्नावली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 11-17 ।

ज्योतिषज्ञों का इन्हें सम्मान प्राप्त था[1] । गुलेर के राजा भी धमभीरु स्वाध्यायी, ब्राह्मणसेवी तथा कर्मकांड में निष्णात हुए हैं और यह परम्परा इस राज के अन्तिम स्वनामधन्य राजा बलदेव सिंह (सन् 1883 से 1962 ई0) तक यथापूर्व प्रचलित रही। राजा बलदेव सिंह अपनी विद्वता और कर्मकांड के कारण त्रिगर्त राज्यों के अतिरिक्त तत्कालीन अन्य राज्यों में भी श्रद्धा-पात्र रहे हैं ।

वंशावली

पुरोहित नारायण का जन्म जड़ोटिये-पुरोहित[2] परिवार में हुआ, जिन्होंने अपने पिता के समान वेदज्ञान, ज्योतिष-शास्त्र तथा अन्य धर्मशास्त्रों में विलक्षण ख्याति प्राप्त की[3] । अपने समय के वे न्याय-प्रवीण तथा उद्भट वैयाकरण माने जाते थे । पुरोहित नारायण के घर तीन पुत्र हुए जिनका नामकरण शिवराम, शिवदत्त और चेतराम किया गया । पुरोहित नारायण की कुब्जादेवी नामक एक कन्या भी थी जिसे बाल-वैधव्य का घोर

1. My great grand father's reputation as an astronomer and author of the Hindu alamanic extended in his days as far as Patiala and Banaras......"

(चन्द्रधर शर्मा गुलेरी वंश परिचय (हस्तलिखित) ।

(2) सारस्वत ब्राह्मण, पौरोहित्य कृत्य के कारण पुरोहित कहलाए ।

(3) पुरोहित नारायण का पूर्ववर्ती वंशवृक्ष-नकल सजरा नसब बन्दोबस्त सन् 1913-14 बावत टीका गुलेर हदबस्त नं0 107, तहसील देहरा, जिला कांगड़ा, (हिमाचल प्रदेश) श्री प्रीतम चन्द पटवारी, सरकल गुलेर के सौजन्य से) ।

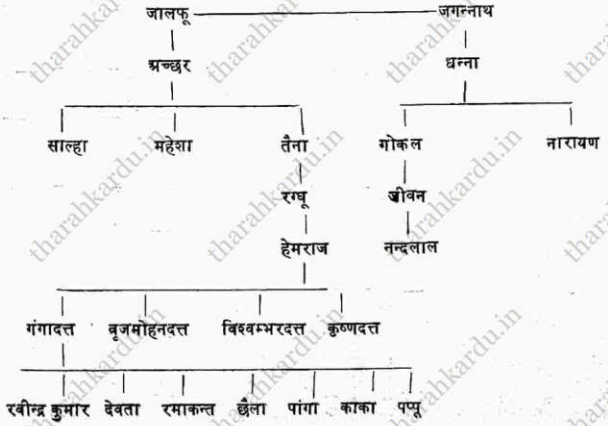

Scanned with CamScanner

दुख भोगना पड़ा । निम्नांकित वंशवृक्ष के द्वारा उनकी वंशावली का स्पष्टीकरण इस प्रकार है[1]–

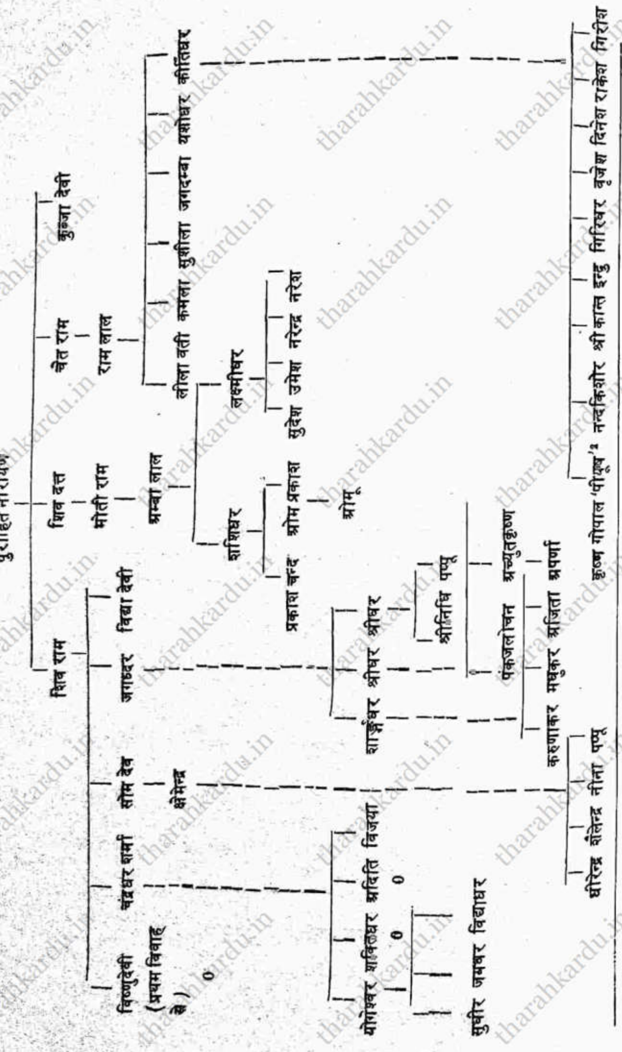

(1) आचार्य माधोराम, श्रीमति विद्या, श्रीमति लीला देवी की सहायता से तैयार किया गया ।

लोक कल्याण और जन-सेवा की भावना से प्रेरित होकर पुरोहित नारायण ने अपने घर में 'सर्पमणियां' रख ली थीं । गुलेर गांव बाणगंगा की घाटी पर अवस्थित होने के कारण विषैले आक्रांतक जल-सर्पों से घिरा रहता था । अतः परोपकार की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपने भवन में ही एक कमरा 'डंगघर' नाम से सांपों के काटे हुए लोगों के उपचारार्थ दे रखा था । यही कारण है कि 'जड़ोटिये' राज पुरोहित चतुर्दिक 'मणिवाले पुरोहित' के नाम से प्रसिद्ध हुए । बाद में यह उपनाम केवल राजघराने के पुरोहित परिवार ही का पर्यायवाची हो गया ।

गुलेरी जी के पिता का जन्म और शिक्षा

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के जीवन को उनके पिता की चारित्रिक गुरुता, साहित्यिक ज्ञान, सामाजिक संघर्ष और ज्ञानार्जन की विकट परिस्थितियों ने किस प्रकार प्रभावित किया इसका वर्णन हम अन्यत्र करेंगे परन्तु यहां उन परिस्थितियों का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्होंने न केवल उनके पिता को बल्कि स्वयं गुलेरी जी को जीवनपर्यन्त प्रथम कोटि के विद्वानों की श्रेणी में ला खड़ा किया ; उन घटनाओं, परिस्थितियों और उनके परिवार के सदस्यों के जीवन पर भी किंचित प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि उनके द्वारा ही उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था ।

यह सत्य है कि मानव जीवन अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का भंडार है । कई बार जीवन में ऐसे परिवर्तनात्मक घटक घटते हैं जो वर्तमान के लिए हेय और हानिप्रद लगकर भी भविष्य का आलोक-पुंज बन जाया करते हैं तथा उस ज्ञान के प्रकाश से संसार के अज्ञानांधकार का नाश होता है । कुछ ऐसा ही आलोक अपने पूज्य पिता के जीवन से गुलेरी जी को मिला था जिससे न केवल उन्हें उच्चतम अध्ययन की प्रेरणा ही मिली प्रत्युत उनकी आत्मा को सर्वदा के लिए हार्दिक श्रद्धा से विनयावनत कर दिया । स्वयं गुलेरी जी का कथन इसका प्रमाण है:—

"यह मेरा सौभाग्य था जिसे महान संस्कृतज्ञ एवं ख्यातिप्राप्त जनक तथा शिक्षक मिले । मैंने स्वच्छन्द रूप से, (कई वर्षों तक उनसे ही संस्कृत पढ़ी[1]"

पं० शिव राम जी का जन्म सन् 1834 ई० में गुलेर-कांगड़ा [हिमाचल प्रदेश (तब पंजाब)] में हुआ । आरम्भ में अपने पिता ही से संस्कृत-हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया । तत्पश्चात् गुलेर ही में नरसिंहों के ठाकुरद्वारे को पाठशाला बनाकर बैरागी 'धम्मन दास' के पास विधिवत् अध्ययन करने लगे । बैरागी धम्मन दास वैदिक साहित्य-निष्णात और संस्कृत-वाङ्‌मय के धुरंधर विद्वान थे । वे आस-पास के गांवों के बालकों की शिक्षा में विशेष रुचि लेते थे, हरिपुर-गुलेर तथा नन्दपुर आदि अन्य गांवों से विद्यार्थी आकर उनकी विद्वत्ता से लाभ उठाने लगे । बालक शिवराम कुशाग्रबुद्धि और गुरुभक्त थे ।

ग्रीष्म ऋतु थी और कड़ाके की धूप पड़ रही थी । बैरागी 'धम्मन दास' मध्यान्ह-अवकाश देकर पुनः सायंकाल विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे, ठाकुरद्वारे के पार्श्व में ही

(1) देखिए : गुलेरी जी की पर्सनल फाइल से संलग्न वंशपरिचय ।

एक टपरे में वैरागी जी निवास करते थे । उस दिन मध्यान्ह के अवकाश में सभी विद्यार्थी अपने-अपने घर गए और गुरू जी अपने घर आराम करने की अपेक्षा ठाकुरद्वारे के शीतल परिक्रमा-स्थान में ही निद्रा-निमग्न हो लिए । गुरु जी को घर गया जानकर स्वभाव से गुरुभक्त बालक शिवराम ने ठाकुरद्वारे के द्वार बन्द करके कुण्डी लगा दी और अपने घर चले गये । सुप्तावस्था से उठकर वैरागी जी को तीव्र शौच का अनुभव हुआ परन्तु प्रयत्न करने पर भी द्वार न खुल पाए, परिणामस्वरूप अनिच्छा से उन्हें वहीं मन्दिर में ही निवृत्त होना पड़ा और उनका पश्चाताप एवं महान दुख आक्रोश का रूप धारण कर गया । विद्यार्थियों ने आकर द्वार खोले तो गुरू जी को विराट रूप में पाया । परिपृच्छा होने पर बालक शिवराम का नाम निकला । गुरू ने इसे शिवराम जी की बाल-स्वभावजन्य धृष्टता, चालाकी और धूर्तता जाना । अतः क्रोधाभिभूत तथा मनोविज्ञान-शून्य हृदय से उन्होंने शिवराम जी की खूब पिटाई की और गालियां भी दीं—वन में लगी हुई अग्नि की भांति यह समाचार तत्क्षण सर्वत्र फैल गया । दो अन्य विद्यार्थी भी इस काण्ड में सम्मिलित थे[1] ।

गृहत्याग

स्वयं को कुल परम्परा के विपरीत पाकर आत्म-ग्लानि एवं लोक-लज्जा के मिश्रित-हीन भाव से उत्प्रेरित होकर स्वाभिमानी बालक शिवराम अपने दो अन्य साथियों के साथ घर त्याग कर उच्च शिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से निकल पड़े । उनके दोनों साथियों के नाम थे—नियालन्द और हिरण्यगर्भ[2] ।

काशी प्रस्थान

बालक शिव राम ने काशी के विद्वानों की भूरी-2 प्रशंसा सुन रखी थी अतः सब मित्रों ने काशी की ओर प्रस्थान किया । शिव राम जी की अवस्था उस समय लगभग 16-17 वर्ष की रही होगी । इस से दो अढ़ाई वर्ष पूर्व उनका प्रथम विवाह हरिपुर (गुलेर) में 'ल्हूतियों' के यहां हो चुका था। शिव राम जी काशी पहुंच गए, स्थान अपरिचित था अतः कई दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे । पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी उन्हें कोई मन का गुरू न मिला । हां गौड़ स्वामी तथा अन्य विद्वानों से उन्हें व्याकरण सीखने का अवसर अवश्य मिल गया किन्तु तृप्ति नहीं हुई और गुरू की खोज जारी रही । कुछ समय बाद काशी के शिक्षक-शिरोमणि प्रकाण्ड संस्कृतज्ञ 'विभव राम जी' ब्रह्मचारी से उनकी भेंट हुई । विभव राम जी केवल ब्रह्मचारियों ही को शिक्षा देते थे और शिव राम जी विवाहित थे । बड़ा कठिन प्रसंग था। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि यदि उनसे पूछा गया तो वे झूठ बोलेंगे । एसे गुरू को पाकर छोड़ना उनके लिए सम्भव नहीं था । परिणाम-स्वरूप जब गुरू ने पूछा तो उन्होंने झूठ बोल दिया । विभव राम ब्रह्मचारी के यहां नियम था कि छात्रों को अन्य नियमों के साथ-साथ नमकरहित भोजन का नियम भी बड़ी कड़ाई से पालन करना पड़ता था ।

(1) (क) श्रीमति विद्यादेवी (गुलेरी जी की कनिष्ट भगिनि) नगरोटा बगवां (कांगड़ा) में दिनांक 13 जून, 1968 को भेंट वार्ता ।
(ख) भेंट संस्मरण : स्व: माधो राम आचार्य (गुलेरी जी के समकालीन) दिनांक 14 अगस्त, 1969 ।
(2) श्री मोती राम अवस्थी (गुलेरी जी के समकालीन) हरिपुर निवासी से भेंट, दिनांक 26-5-1968 ।

नवागंतुक शिष्य को दीक्षा देकर गुरू ने भविष्यवाणी की थी कि अगर शिव राम तेरह वर्ष उनके पास कठिन यातनापूर्ण विद्यार्थी जीवन में सफल उतरा तो उस का विद्याभ्यासोपरांत इतना मान-सम्मान होगा कि राजा लोग उसकी पालकी को कंधा लगाएंगे और चंवर डुलाएंगे । अपनी पत्नी को ब्रह्मचारी जी ने पहले ही कड़े आदेश दे रखे थे कि वह शिव राम को बिना नमक के दाल-तरकारी दिया करे और अगर कभी विद्यार्थी नमक मांगे तो उसकी सूचना तुरन्त ब्रह्मचारी जी को दी जाए । अध्यापन और अनुशासन के मामले में गुरू इतने नियमित थे कि रात्रि को एक रस्सी से शिव राम जी की शिखा बांध कर छत ऊपर के कुण्डे में से निकाल कर अपनी कलाई में बांधे रहते थे । शिक्षार्थी ब्रह्मचारी को स्वाध्याय का आदेश रहता था । अगर कभी विद्यार्थी को निद्रा का झोंका भी आता तो रस्सी सरकती और गुरू जी की कलाई ऊपर उठती और वे सावधान हो कर रस्सी को ऊपर खींचकर विद्यार्थी को चेतावनी दे कर पुनः अभ्यास निमग्न कर देते थे[1] ।

इस प्रकार अभ्यास करते-करते शिव राम जी को बारह वर्ष बीत गए, उधर घर के सभी लोग चिंतित थे । एक दिन शिव राम जी ने गुरू पत्नी से कहा "मुझे नमक चाहिए" गुरू पत्नी ने झट ब्रह्मचारी जी को बताया—"शिव राम आज नमक मांग रहा है" गुरू जी ने क्रोध से शिव राम जी से पूछा—"दुष्ट! क्या तू विवाहित है ?"

अपने गुरू को साक्षात् दुर्वासा बने देख कर शिष्य थर-थर कांप रहा था । कुछ कहते नहीं बन रहा था । गुरू ने पुनः वही प्रश्न दोहराया—"दुष्ट ! क्या तू विवाहित है ?"
शिव राम जी ने उत्तर दिया—"जी हां ।"
"मुझ से झूठ क्यों बोला था ?"

शिव राम जी गुरू चरणों पर शीश टिका कर क्षमा-याचना करते हुए बोले—"गुरू देव ! मुझे आप से विद्याध्ययन करना था । आपका नियम अविवाहितों को शिक्षा देने का है । मैंने अध्ययन की लिप्सा ही से झूठ कहा था अन्यथा न मानिए, क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिये ।"

गुरू विभव राम जी बड़े पहुंचे हुए थे । उन को पता था कि यदि यह विवाहित होगा तो तेरह वर्ष तक विद्याध्यन करते हुए एक न एक दिन नमक अवश्य मांगेगा, वही हुआ भी । दैवयोग से उसी दिन शिव राम जी की पत्नी का देहान्त हुआ था, ये सब संयोग बड़े ही विचित्र थे और शिव राम जी के जीवन की विलक्षणता को सूचित करने वाले थे ।

त्रिमूर्ति शास्त्रार्थ और जयपुर गमन

इस प्रकार गुरू ने शिक्षावधि के एक वर्ष पूर्व ही शिव राम जी को दीक्षा दे कर घर जाने का आदेश दिया । उन्हीं दिनों हिमालय से आए हुए तीन महात्माओं ने राजा जयपुर से कह कर किसी सारस्वत ब्राह्मण से शास्त्रार्थ करने की अपनी इच्छा प्रकट की ।

(1) भेंट वार्ता : आचार्य माधो राम जी से, दिनांक 21-4-1968 ई0, स्थान गुलेर (कांगड़ा) ।

Scanned with CamScanner

इस पर ब्रह्मचारी विभव राम ने कहा "अस्मि," अपने पिता को स्वयं प्रस्तुत होते देखकर उनके पुत्र राम भजन जी खड़े हो कर बोले—"अहम् अस्मि" अब विद्वान शिष्य की बारी थी। वे बोले, "अहम् चास्मि" शिष्य के अनुनय विनय करने पर गुरू ने उसे शास्त्रार्थ करने की अनुमति प्रदान कर दी[1]।

शास्त्रार्थ को जाते समय गुरू जी ने शिष्य को अपनी पगड़ी, अंगरखा और पादुकाएं दे कर आशीर्वाद दिया और कहा, "शिव राम! अब तुम्हारे गुरू के सामने दो ही मार्ग हैं। अगर तुम शास्त्रार्थ में असफल हुए तो लज्जा का जीवन यापन करने की अपेक्षा मैं संखिया खा लूंगा और अगर सफल हुए तो राजा तुम्हारी पालकी उठाते हुए और तुम पर चंवर डुलाते हुए तुम्हें मेरे घर के सामने से विश्वनाथ के मन्दिर की यात्रा करेंगे . . . यह देख कर मेरी छाती गर्व से फूल उठेगी . . . "शिष्य ने श्रद्धा से गुरू को प्रणाम किया और प्रभु का स्मरण करके शास्त्रार्थ के लिए चल दिया।

तीन दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहा। कोई निर्णय नहीं हो पा रहा था, अन्त में भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान पं० शिव कुमार शास्त्री ने श्री शिव राम जी को दिग्विजयी घोषित कर दिया।

शिव राम जी को विजयमाला पहनाई गई। गुरू का जय जयकार हुआ और शिव राम जी की पालकी को चंवर डुलाते हुए राजा और विद्वान लोग विश्वनाथ जी के मन्दिर की ओर यात्रा पर चले। पग-पग पर कंधे बदले जाते थे तथा राजाओं और विद्वानों में होड़ लगी हुई थी कि कौन अधिक देर तक पालकी उठाता है। पालकी के गुरूगृह के समक्ष पहुंचने पर शिव राम जी ने अपनी पालकी रुकवा कर विजयमाला उतार कर गुरू चरणों पर रख दी। तदनन्तर सब विद्वानों ने भी ब्रह्मचारी विभव राम जी को नमस्कार किया[2]। पण्डित शिव राम जी की विद्वत्ता और पांडित्य से प्रभावित हो कर महाराजा जयपुर तथा दरभंगा-नरेश प्रभृति राजाओं ने उन्हें अपना-अपना राज्य-पण्डित बनाने का निमंत्रण दिया। जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह शिव राम जी की योग्यता पर विशेष रूप से मुग्ध थे। शिव राम जी ने अपने गुरू से मन्त्रणा की और निश्चय किया कि वे जयपुर के महाराज को ही कृतार्थ करेंगे। उन्होंने गुरुपुत्र श्री 'राम भजन' को अपने साथ ले जाने की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली और दोनों जयपुर पहुंचे।

जयपुर में उनकी नियुक्ति प्रधान पण्डित के रूप में हुई। साथ ही उनको धर्मव्यवस्था देने वाली "मान मन्दिर" सभा का भी अध्यक्ष बना दिया गया। इन दो पदों के अतिरिक्त वे स्थानीय संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल थे[3]। कोई अड़तालीस वर्ष तक उन्होंने संस्कृत व्याकरण, दर्शन-शास्त्र तथा वैदिक-दर्शन की शिक्षा दी। इन दिनों भारत के

1. स्व० विभवराम जी ब्रह्मचारी के पौत्र श्री राम लाल शास्त्री, लाहौरी टोला, वाराणसी, से दिनांक 16–6–1968 को भेंट।
2. (क) पुरोहित कुलगुरू आचार्य (स्व०) माधो राम जी से 21–4–1968 को भेंट, जिन्होंने बाल्यावस्था का कुछ समय शिव राम जी के साथ बिताया था।
2. (ख) श्री राम लाल शास्त्री से वाराणसी में दिनांक 16–6–1969 को भेंट।
3. बा० श्यामसुन्दर दास, प्रस्तावना, निबन्ध रत्नावली, पृ० 11–17।

सर्वश्रेष्ठ वैयाकरणों और दर्शनशास्त्रियों में उनकी गणना होती थी। महाभाष्य जैसा जटिल और दुर्बोध ग्रन्थ उन्हें कण्ठाग्र था और अपने शिष्यों को मौखिक रूप से पढ़ाते थे। इस स्थिति में महाराज सवाई राम सिंह के तो वे श्रद्धा और सम्मान-भाजन रहे ही, अपने सदाचार, सच्चरित्रता, अध्ययनशीलता और अध्यापन-कौशल्य के कारण समाज के सभी वर्गों में उन्होंने मान-सम्मान प्राप्त किया। अपने अड़तालीस वर्ष के अध्यापन काल में उन्होंने असंख्य विद्वान उत्पन्न किये, जिनमें से कइयों को भारत-सरकार द्वारा महामहोपाध्याय की उपाधि से भी विभूषित किया गया[1]।

अपने जयपुर प्रवास-काल में उन्होंने विशेष रूप से अध्यापक और धर्म-व्यवस्थापक के रूप में ही विशेष ख्याति पाई। लेखन-कार्य यदि उन्होंने किया तो वह यह कि लघु सिद्धान्त कौमुदी के अर्वाचीन छात्रोपयोगी संस्करण का संशोधन और सम्पादन[2]। यद्यपि यह छात्रोपयोगी-ग्रन्थ है परन्तु इससे यह पता चलता है कि यदि वे लेखन-कार्य में प्रवृत हुए होते तो अनेक स्मरणीय ग्रंथों के स्रष्टा के रूप में भी अमरत्व प्राप्त कर लेते।

अपने पिता के संघर्षपूर्ण जीवन, विद्वत्ता और मान-प्रतिष्ठा का गुलेरी जी के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके प्रकाश से वे स्वयं तो प्रकाशित हुए ही, साथ-साथ दूसरों को भी आलोकित किया।

शिव राम जी का दूसरा विवाह गुलेर से कोई छः किलोमीटर दूर 'पंजबड़' नामक स्थान में 'नौरियों' की कन्या से हुआ। उस समय वे उनत्तीस वर्ष के थे इस पत्नी से एक कन्या उत्पन्न हुई उसका नाम 'विशनीदेवी' था। विशनीदेवी का विवाह हरिपुर निवासी तुलाराम अवस्थी से हुआ। शिवराम जी की दूसरी पत्नी प्रायः अठारह वर्ष का वैवाहिक जीवन-यापन करके स्वर्ग सिधार गई।

पुरोहित नारायण शिवराम जी की वंश-वृद्धि के लिए चिंतित थे। उन्होंने जवाली गांव के पण्डित 'राम दित्ता' से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रस्ताव किया, परन्तु पंडित राम दित्ता अपनी लड़की का कहीं अन्यत्र सम्बन्ध जोड़ बैठे थे। अतः उन्होंने पु० नारायण को इन्कार कर दिया। परन्तु जब रामदित्ता की पत्नी को ज्ञात हुआ कि उनकी पुत्री का सम्बन्ध एक प्रतिष्ठित घराने में हो रहा है तो उसने पुरोहित नारायण की प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें कृतार्थ किया। इस पर पहले वाले सम्बन्धियों ने पं० रामदित्ता पर अभियोग चला दिया और राम दित्ता को सजा हो गई। उधर राम दित्ता की पत्नी ने पति की अनुपस्थिति में ही 'लक्ष्मी' का विवाह पं० शिवराम जी से कर दिया। इस समय शिवराम जी की अवस्था कोई अड़तालीस-उनचास वर्ष की थी और लक्ष्मी की वय तेरह वर्ष। शिव राम जी का यह तीसरा विवाह था[3]।

शिव राम जी के परिवार में मुख्य कार्य पौरोहित्य का था। वे स्वयं तो पुरोहित थे

1. देखिए: चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, वंश परिचय (हस्तलिखित), 29 अप्रैल, 1916 ई०।
2. श्री रघुनन्दन प्रसाद, 'उसने कहा था' के अमर लेखक गुलेरी जी मेरे गुरू भाई थे, धर्मयुग, 12 जुलाई, 1964, पृ० 18।
3. पुरोहित कुलगुरू श्री (स्व०) माधो राम आचार्य से गुलेर में दिनांक 21-4-1968 को भेंट।

Scanned with CamScanner

ही, उनके दोनों भाई भी यही कार्य करते थे। उनमें से शिवदत्त जी के मोती राम और चेतराम जी के रामलाल पुत्र हुए। इनकी शिक्षा-दीक्षा जयपुर में पं0 शिव राम जी के पास ही हुई। पं0 मोतीराम जी गुलेर-राज्य के क्षत्रियों के पुरोहित थे। पं0 राम लाल गुलेर राज- दरबार के कुलगुरू के रूप में प्रतिष्ठित हुए[1]।

शिव राम जी की कुल पांच संतानें हुईं। द्वितीय विवाह से एक कन्या थी तथा तृतीय विवाह से तीन पुत्र और एक पुत्री। हम यह पहले ही बता चुके हैं कि शिव राम जी किस तरह नाटकीय ढंग से काशी में शिक्षा प्राप्त करके जयपुर पहुंचे थे। जयपुर में इन्होंने लगातार अड़तालीस वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। अध्यवसायी पं0 शिव राम जी महाराज वि0 1968 तदनुसार ईसवी सन् 1910 में 76 वर्ष की वय में जयपुर में परलोकवास हुए।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म

राजसम्मान प्राप्त महान संस्कृतज्ञ धर्म-व्यवस्थापक, दार्शनिक, वैयाकरण तथा लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान पं0 शिव राम जी शास्त्री के घर उनकी तृतीय पत्नी से हमारे चरित्र-नायक अमर कहानीकार पं0 चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म 25 आषाढ़ संवत् वि0 1940 तदनुसार 7 जुलाई सन् 1883 ई0 को जयपुर में हुआ। उस दिन शनिवार था। पं0 चन्द्रधर शर्मा अपने पिता के चिर-प्रतीक्षित ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी जन्म कुण्डली में कर्क राशि का स्वामी चन्द्र था इसीलिए पिता ने इन का नाम चन्द्रधर रख दिया। यह बात गुलेरी जी की निम्नांकित जन्म-कुण्डली से स्पष्ट होती है :—

5　　　　3 स बु वृ शु.

6　　　　4 चं　　　　2 मं श

7 रा　　　　के 1

8　　　　10　　　　12

9　　　　11

चन्द्रधर शर्मा अपने कुल की परम्परानुसार बड़े मेधावी और प्रत्युत्पन्नमति थे। वे 'यथा नाम तथा गुण' की कहावत को चरितार्थ करके अनुदिन चन्द्रकलाओं की तरह वृद्धि को प्राप्त हो कर प्रकाशित होने लगे।

जयपुर प्रवास काल: आरम्भिक जीवन

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी में शैशवकाल ही से अद्भुत प्रतिभा के लक्षण प्रकट होने लगे थे। उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। घर में संस्कृतमय वातावरण उपलब्ध हुआ और चार-पांच

1. दे: गुलेर राज्य के अन्तिम राजा श्री बलदेव सिंह जी महाराज द्वारा लेखक के पितामह श्री रामलाल जी को दिया गया वचन-पत्र।

वर्ष की आयु ही में इन्होंने संस्कृत बोलने का अच्छा अभ्यास कर लिया[1]। बाल्यावस्था में संस्कृत का अभ्यास इनकी माता ही ने करवाया था और संस्कृत के मूर्द्धन्य विद्वान शिव राम जी के समुचित निर्देशन ने सोने में सोहागे का काम किया। गुलेरी जी की विलक्षण मेधा देख कर बड़े-बड़े विद्वान दंग रह जाते थे[2]। पांच छः वर्ष की अवस्था में इन्हें संस्कृत के तीन-चार सौ श्लोक और अष्ठाध्यायी के दो अध्याय एवं कई सूत्र कंठस्थ थे[3]। उनकी स्मरणशक्ति इतनी प्रखर थी कि वे घर में आए हुए अतिथियों के सामने अमरकोष का सस्वर पाठ सुनाया करते थे। नौ-दस वर्ष की आयु में गुलेरी जी मातृभाषा की भांति संस्कृत में वार्तालाप करते थे। वास्तव में गुलेरी परिवार में संस्कृत मातृभाषा की भांति ही व्यवहृत होती थी[4]। इतनी अल्पायु ही में आपकी संस्कृत बोलने में वह अबाध गति थी कि एक बार संस्कृत में एक छोटा सा भाषण देकर आपने 'भारतधर्म महामण्डल' के सदस्यों को अपनी इस नैसर्गिक प्रतिभा से चमत्कृत कर दिया था[5]। इस समय आपकी अवस्था कोई दस वर्ष की थी। उपस्थित समुदाय ने आपकी भूरी भूरी प्रशंसा की। इस प्रकार गुलेरी जी की आरम्भिक शिक्षा माता-पिता की छत्रछाया में घर ही में हुई। बड़े होने पर भी वे अपने पिता से संस्कृत का गम्भीर अध्ययन करते रहे।

बाल्यकाल से ही गुलेरी जी की प्रतिभा और योग्यता को देख कर, 'होनहार बिरवान के होते चिकने पात' वाली कहावत स्मरण हो आती है। पण्डितों ने भी शिशु-गुलेरी में महापुरुष के बीजों की विद्यमानता की भविष्यवाणियां की थीं जो गुलेरी जी के जीवन में शनैः-शनैः सत्य होती गईं, बचपन ही से शिशु गुलेरी बड़े सुन्दर, चतुर और दिव्य थे।

आरम्भिक शिक्षा

इन्होंने महाराज कालेज, जयपुर में सन् 1893 ई0 में प्रवेश लिया। इस प्रकार इनकी अंग्रेजी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। चार वर्षों के अनन्तर इन्होंने सन् 1897 ई0 में द्वितीय श्रेणी में मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1969 ई0 में इन्होंने इलाहाबाद

1. बा0 श्यामसुन्दर दास, निबन्ध रत्नावली, प्र0 सं0, पृष्ठ 11–17।
2: "......He studied Sankrit with his Father at Home. From his very childhood he showed signs of an unusual Promise" (Mayo college magazine volume XVIII, Nov. 1922, Page 7)
3. बा0 श्यामसुन्दर दास, प्रस्तावना–निबन्ध रत्नावली, प्र0 सं0।
4. महामहोपाध्याय कविराज गोपीनाथ जी से काशी में दिनांक 14–6–1969। को भेंट (सहायक थे श्रीयुत पं0 नर्मदेश्वर चतुर्वेदी)।
5. देखिए: मेयो कालेज पत्रिका, अजमेर, अंक संख्या 18, नवम्बर सन् 1922, पृष्ठ 7।

(6) देखिए: गुलेरी जी का प्रमाण-पत्र।

Scanned with CamScanner

विश्वविद्यालय से ऐंट्रेंस परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और अब तक के सभी रिकार्डों को तोड़ कर प्रथम स्थान प्राप्त किया[1]। ऐंट्रेंस में ऐसा अभूतपूर्व परिणाम जयपुर राज्य के शिक्षा के इतिहास में देखने में नहीं आया था[2]। इसी वर्ष इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण की[3]। इनकी अपूर्व सफलता पर महाराज जयपुर ने जयपुर राज्य की ओर से इन्हें एक स्वर्णपदक और अन्य कई पुरस्कार प्रदान किये[4]। यह एक महान् उपलब्धि थी अतः उसके लिए पुरस्कृत होना अत्यन्त स्वाभाविक था।

गुलेरी जी केवल परीक्षाओं में ही उच्च स्थान प्राप्त करने की चिन्ता नहीं करते थे प्रत्युत गम्भीर विषयों का अध्ययन भी साथ-साथ करते थे। उदाहरणार्थ जिस वर्ष उन्होंने इलाहाबाद तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की उसी वर्ष उन्होंने महाभाष्य का भी गहन अध्ययन प्रारम्भ कर दिया[5]।

विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की उनकी उत्कट लालसा का पता इस बात से चलता है कि जब उन्होंने एफ०ए० की परीक्षा पास की तो विषय थे—तर्कशास्त्र, ग्रीक तथा रोमन इतिहास, भौतिक-विज्ञान, रसायन शास्त्र, संस्कृत (साधारण) तथा उच्चतर गणित[6]। इसके साथ ही वे हिन्दी के ऐच्छिक-पत्र में भी उत्तीर्ण थे[7]।

स्वाध्याय और ज्ञानार्जन का स्वभाव बहुत कम लोगों को होता है। हमारे चरित-नायक में ये गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे और आरंभिक-जीवन ही से उन्होंने अध्ययन-अनुशीलन में अपना जीवन लगा दिया। गुलेरी जी के विद्याव्यसन के सम्बन्ध में श्री राजेन्द्र सिंह ने ठीक ही लिखा है—"गुलेरी जी मुख्यतया संस्कृत-साहित्य के महापण्डित थे। उनका झुकाव अध्ययन की ओर ही विशेष रूप से था। वे लिखना चाहते तो लिख सकते थे, पर इस साधन से उन्होंने लाभ उठाने और यश प्राप्त करने की कामना नहीं की।"[8]।

ऐंट्रेंस से लेकर बी०ए० तक विभिन्न विषय रखना और फिर उनमें समुचित योग्यता प्रदर्शित करना गुलेरी जी जैसे अद्भुत व्यक्तियों के लिए ही संभव है। इन सब बातों से उनकी रुचि-विभिन्नता और सार्वभौम ज्ञान की अद्भुत तड़प के दर्शन होते हैं। यही नहीं उन्होंने

1. देखिए: गुलेरी जी का प्रमाण-पत्र।
2. देखिए: मेयो कालेज, गुलेरी जी की पर्सनल फाइल।
3. देखिए: गुलेरी जी का प्रमाण-पत्र।
4. मेयो कालेज अजमेर, पत्रिका, अंक 19 नवम्बर, 1922, पृ० 7।
5. बा० श्याम सुन्दर दास, निबन्ध रत्नावली, प्र०सं०, प्रस्तावना।
6. देखिए: मेयो कालेज अजमेर, गुलेरी जी की पर्सनल फाइल।
7. देखिए: गुलेरी जी का प्रमाण-पत्र।
8. राजेन्द्र सिंह, लेखक, पृष्ठ 182।

एफ०ए० की परीक्षा में अंग्रेज़ी के गद्य के पर्चे में कलकत्ता के सभी कालेजों में दूसरा स्थान प्राप्त किया था[1]।

सन् 1902 में जब कर्नल सर स्विण्टन जेकब तथा कैप्टन ए०एफ० गैरेट जयपुर की वेधशाला के जीर्णोद्धार के लिए नियुक्त हुए तो उन्हें एक ऐसे व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता अनुभव हुई जो संस्कृत भाषा का प्रकाण्ड पण्डित हो और ज्योतिष-शास्त्र का वेत्ता होने के साथ ही पश्चिम की भी दो-तीन भाषाओं का पूर्ण ज्ञान रखता हो। अपने विद्यार्थीकाल ही में गुलेरी जी ने अपनी विद्वता की ऐसी धाक जमा रखी थी कि इस कार्य में विदेशियों की सहायता के लिए उन्हीं का चयन हुआ। उन्होंने जयपुर के ज्योतिष-मन्त्रालय के पुनरुद्धार में अभूतपूर्व सहायता की तथा सम्राट्-सिद्धान्त जैसे दुर्बोध ज्योतिष ग्रन्थ का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। इसके साथ-साथ मन्त्रों के स्थिर तथा निश्चित करने और उनके परीक्षण में अपूर्व योगदान दिया[2]।

गुलेरी जी की योग्यता कर्मठता, निष्ठा, अद्भुत ज्ञान एवं अमूल्य सहायता से प्रभावित होकर दोनों विदेशी-विद्वानों ने पृथक-पृथक प्रशंसा पत्र प्रदान किये। इनमें गुलेरी को भारतीय ज्योतिष-शास्त्र का प्रकाण्ड और असाधारण पण्डित स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त अठारह वर्ष की अवस्था में आपने ए०एफ० गैरेट के सहयोग से "जयपुर औबजर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स" नामक ग्रन्थ भी लिखा। कालेजीय शिक्षा प्राप्त करने पर भी उनका संस्कृत का अध्ययन घर पर जारी रहा[3]। गुलेरी जी की यंत्रालय सम्बन्धी इस उपलब्धि पर जयपुर राज्य ने तीन सौ रुपये की पुस्तकें प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया[4]।

उन्हीं दिनों गुलेरी जी का सम्पर्क "काव्य माला" के सम्पादक महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गा प्रसाद जी के साथ हुआ। पं० दुर्गा प्रसाद संस्कृत के धुरंधर विद्वान और प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता थे। इन के संसर्ग ही से गुलेरी जी के हृदय में देशसेवा, साहित्य प्रेम आदि कई उपयोगी अंकुर उत्पन्न हुए[5]।

सन् 1897 ही में इनका परिचय जयपुर के स्वर्गीय जवाहरलाल जैन से हुआ था। जवाहर लाल "जैन वैद्य" नाम से प्रसिद्ध थे। जैन वैद्य विद्यानुरागी, हिन्दी प्रेमी तथा सजग कांग्रेस कार्यकर्ता थे, इनका अनेक सामाजिक और साहित्यिक संस्थाओं से सम्बन्ध था। उसी समय गुलेरी जी का झुकाव हिन्दी के प्रति हुआ, दोनों ही ने मिलकर हिन्दी की सेवा करने का व्रत लिया। सन् 1900 में गुलेरी जी ने जैन वैद्य से मिलकर जयपुर में 'नागरी भवन' पुस्तकालय स्थापित किया। एफ०ए० की परीक्षा पास करते समय ही उन्होंने ये सब कार्य कर लिए थे।

(1) देखिए: मेयो कालेज अजमेर पत्रिका में गुलेरी जी की पर्सनल फाइल।
(ख) देखिए: नवल कृष्ण राय, कलकत्ता, का पत्र दिनांक 13 मई, 1901।
(2) ए०एफ० गरेट, प्रस्तावना, जयपुर आब्जर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर्स, प्र० सं०।
(3) मेयो कालेज मैगज़ीन, अंक XVIII, पृष्ठ 7, नवम्बर, 1922।
(4) सम्पादक शक्तिधर—गुलेरी जी की अमर कहानियां, तृ०सं०, पृष्ठ 4।
(5) बा० श्यामसुन्दर दास, निबन्ध रत्नावली, प्र०सं०, प्रस्तावना।

Scanned with CamScanner

सन् 1903 में गुलेरी जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय की बी०ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। बी०ए० में इनके विषय अंग्रेजी साहित्य, दर्शनशास्त्र तथा संस्कृत थे [1]। महाराजा कालेज जयपुर तथा राजपूताना के समस्त कालेजों के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। इस उपलक्ष्य में जयपुर राज्य ने इन्हें फिर तीन सौ रुपये की पुस्तकों और अन्य कई पुरस्कारों से सम्मानित किया। इन्होंने फिर एक बार जयपुर राज्य का स्वर्णपदक भी जीता। विश्व-विद्यालय की ओर से जयपुर का नार्थब्रुक रजतपदक प्रदान कर इन्हें वर्ष का सर्वोत्तम छात्र भी घोषित किया गया[2]। इस समय आप घर पर वेद और प्रस्थान-त्रयी का अभ्यास भी कर रहे थे [3]।

बी ०ए० परीक्षा उत्तीर्ण करके गुलेरी जी ने दर्शन-शास्त्र में एम० ए० करने की सोची और उन्होंने विषय का आवश्यकता से अधिक अध्ययन भी किया। परन्तु एक आकस्मिक घटना के कारण वे पूरी परीक्षा न दे सके। हुआ यह कि परीक्षा के दिनों में भी वे रात को देर तक पढ़ते रहे। ब्राह्म-मुहूर्त में उठने की आदत थी। इस लिए नींद पूरी नहीं हुई और परीक्षा भवन में तन्द्रा की अवस्था में सारा समय बिताकर चले आए। लेकिन इस से उनकी ज्ञान-पिपासा बढ़ती ही चली गई। वस्तुतः परीक्षा तो एक निमित था अन्यथा वे दर्शन-शास्त्र के गहन अध्येता थे। अगले वर्ष अर्थात् सन् 1904 ई० में जयपुर राज्य के आग्रह से गुलेरी जी को खेतड़ी-नरेश जयसिंह का शिक्षक और अभिभावक बनकर मेयो कालेज अजमेर जाना पड़ा। इस प्रकार उनका एम० ए० करने का विचार पूरा न हो सका[4]। इस विषय में स्वयं गुलेरी जी लिखते हैं —"मैंने दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की तैयारी की थी, परीक्षा की आवश्यकता से भी बढ़कर विषय का अनुशीलन किया किन्तु अस्वस्थता के कारण परीक्षा ही न दे सका"[5]।

अन्त में यह कहना असंगत न होगा कि स्कूल से लेकर कालेज स्तर की सभी परीक्षाओं में गुलेरी जी प्रथम पुरस्कार विजेता रहे। उन्होंने सदैव ही नए रिकार्ड स्थापित किये और अपनी कक्षा के मुख्य छात्र के रूप में जाने जाते रहे। इन्हीं के शब्दों में—" . . . मैं सदैव ही अपनी कक्षा का मुख्य छात्र रहा और प्रथम पुरस्कार जीते।"[6]

विवाह

कोई बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में गुलेरी जी का विवाह पद्मावती से हुआ। इनके विवाह की बड़ी अद्भुत कहानी है। जब गुलेरी जी बी० ए० पास कर चुके तो

(1) गुलेरी जी की पर्सनल फाइल—व्याख्यात्मक वंश परिचय।

2. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, वंश परिचय (अप्रकाशित)।

3. डा० श्याम सुन्दर दास, निबन्ध रत्नावली, प्रस्तावना।

4. मेयो कालेज मैग्जीन अंक XVIII, पृष्ठ 7, नवम्बर, 1922।

5. देखिये गुलेरी जी की पर्सनल फाइल।

6. ———वही———

पिता ने उनका सम्बन्ध गरली[1] में निश्चित कर दिया। शिव राम जी उनका विवाह करने अपने गांव गुलेर[2] गए हुए थे। विवाह की सभी तैयारियां पूरी हो गई थीं किन्तु दुर्भाग्यवश कन्या के पिता का अचानक देहान्त हो गया। पं० शिव राम जी बड़े असमंजस में फंस गए। वे चन्द्रधर जी को अविवाहित लेकर जयपुर लौटना नहीं[3] चाहते थे क्योंकि जयपुर राज्य की ओर से उन्हें पांच सौ रुपये की सहायता मिली हुई थी। विवाह किये बिना लौटने में वे अपना अपमान समझ रहे थे इसलिए शीघ्र ही हरिपुर-[4] निवासी कवि रैणा की सुपुत्री पद्मावती से उनका सम्बन्ध स्थापित किया गया। उनका विवाह बड़ी धूमधाम और ठाठ-बाठ से सम्पन्न हुआ। पत्नी सुन्दर, सुशील और धर्मपरायणा थी। गुलेरी जी के समग्र जीवन पर विचार करने से पूर्व उनके परिवार के विषय में भी जानना आवश्यक है।

गुलेरी परिवार

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पं० शिव राम जी के पास उनके भतीजों—श्री मोती राम तथा राम लाल ने विद्याभ्यास किया था। मोती राम जी के अम्बा लाल पुत्र हुए। अम्बा लाल के तीन पुत्र हुए—गुणधर, शशिधर और लक्ष्मीधर। लक्ष्मीधर गुलेर गांव में ही उपाध्याय का कार्य कर रहे हैं।

पुरोहित राम लाल के घर में तृतीय विवाह से चार कन्याएं और दो लड़के हुए जिनके क्रमशः लीलावती, कमला देवी, सुशीला देवी, जगदम्बा, यशोधर और कीर्तिधर नाम रखे। राम लाल जी को एक बार दारुण पुत्र-वियोग भी सहना पड़ा। उनके कनिष्ठ पुत्र श्री कीर्तिधर अभी तीन वर्ष के भी नहीं हुए थे कि राम लाल जी का स्वर्गवास हो गया। पं० कीर्तिधर ने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् गुलेर-राज्य का पौरोहित्य सम्भाला। अपने जीवनकाल में स्वयं गुलेरी जी अपने भतीजे पं० कीर्तिधर की प्रचुर सहायता करते रहे। जब राजा बलदेवसिंह बहादुर गुलेर राज्य की गद्दी पर पर बैठे तो पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने कीर्तिधर जी की गोद में बिठाकर राजा को राजतिलक दिया था। अपने भाई राम लाल जी के साथ गुलेरी जी का अगाध

1. गरली तहसील देहरा, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) का एक गांव है जो गुलेर से लगभग 28—30 किलोमीटर दूर है।

2. समुद्र तट से 478 मीटर (1,555 फुट) की ऊंचाई पर पठानकोट-जोगिन्दर नगर लाइन पर पठानकोट से 72 किलो मीटर उत्तर पूर्व दिशा में गुलेर का पर्वतीय स्थान है। इस स्थान का हिमाचल प्रदेश के गौरवपूर्ण इतिहास में विशेष स्थान है परन्तु साहित्यकारों और कलाकारों के लिए यह स्थान तीर्थ से कम नहीं है।

3. गुलेरी जी की कनिष्ठ भगिनी श्रीमती विद्या देवी से नगरोटा बगवां में भेंट, दिनांक, 13 जून, 1968।

4. हरिपुर, गुलेर-राज्य का राज्य-नगर था। गुलेर और हरिपुर की वाणगंगा विभाजक नदी है। गुलेर और हरिपुर का अन्तर कोई तीन किलोमीटर है।

Scanned with CamScanner

प्रेम था[1]। दोनों भाइयों का बाल्यकाल जयपुर में इकट्ठे बीता था। पं० कीर्तिधर गुलेर राज्य के राजपुरोहित हैं। और अपने गांव में सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

शिव राम जी की तीसरे विवाह से कुल चार सन्तानें—श्री चन्द्रधर, सोमदेव, जगद्धर और विद्यादेवी हुईं।

पं० सोमदेव जी का जन्म सन् 1888 ई० में जयपुर में हुआ था। इनकी शिक्षा पुरानी परिपाटी से पं० शिव राम जी की देख रेख में हुई। आप संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। श्री सोमदेव अपने घर में मध्यम सन्तान होने के कारण 'मध्यम' नाम से जाने जाते थे। आप बड़े प्रसन्नचित्त और फक्कड़ स्वभाव के व्यक्ति थे। स्व० श्री गुलेरी जी का इनके साथ अगाध प्रेम था, वे जयपुर में अपने पिताजी की विशेष सहायता किया करते थे। पं० शिव राम के देहान्त के पश्चात् वहीं जयपुर के राज्य-पण्डित हुए। इन का विवाह पं० शिव राम जी ने अपने गांव गुलेर जाकर 'महन्ता की धर्मशाला (जिला होशियारपुर)' में किया था। सोमदेव जी की पत्नी का नाम "कृष्णा देवी" था। कृष्णा देवी से एक पुत्र हुआ जिसका नाम 'क्षेमेन्द्र' रखा गया। विवाह के दो अढ़ाई वर्ष बाद ही श्रीमती कृष्णादेवी स्वर्ग सिधार गईं। दूसरा विवाह कांगड़ा में वज्रेश्वरी देवी से हुआ। सोमदेव जी कोई पैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्ग सिधार गए। सोमदेव जी का देहान्त गुलेरी जी के लिए असह्य था, हम पहले ही कह चुके हैं कि सोमदेव जी के प्रति गुलेरी जी का बहुत आकर्षण था, अतः यह दुख नासूर के घाव की तरह गहराता ही गया। अपने अनुज की मृत्यु के कारण वह खिन्न रहने लग गए थे। अब उनका मन संसार से उचट गया था, इसका पता हमें रानी सूर्यकुमार जी के नाम लिखे उनके उस पत्र से लगता है जिसमें उन्होंने छोटे भाई की मृत्यु पर महान संताप व्यक्त किया था। और हुआ भी वही। भाई की मृत्यु के कुछ मास बाद ही गुलेरी जी भी स्वर्ग सिधार गए। भ्रातृ-प्रेम का यह अप्रतिम उदाहरण है।

मेजर जगद्धर शर्मा का जन्म सन् 1893 ई० जयपुर में हुआ, आप गुलेरी जी के कनिष्ठ भ्राता थे। अतः घर में इन्हें 'कनिष्ठ' कह कर ही पुकारा जाता था। इनकी प्रारम्भिक-शिक्षा पुरानी परिपाटी ही से हुई। संस्कृत और हिन्दी इनके लिए मातृ-भाषा के समान थीं। इन्होंने जयपुर के महाराज कालेज से इन्टर किया और बी० ए० में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। तदनन्तर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम० ए० और एल० एल० बी० एक साथ पास किये। कुछ समय तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अर्थ-शास्त्र विभाग में शोध-कार्य करते रहे। इसी समय सन् 1917 ई० में लायलपुर (पंजाब) के कृषि कालेज में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए। सन् 1948 ई० में आप ने सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण किया। उस समय आप प्रिंसिपल हो गए थे। आपको सैनिक शिक्षा और प्रशिक्षण में विशेष कार्यभार सम्भालने के कारण अपने नाम के साथ मेजर लगाने का अधिकार प्राप्त था।

2. राम लाल जी के नाम गुलेरी जी के पत्र के आधार पर।

कुछ समय तक आप जोबनेर (राजस्थान) की कृषि संस्था के अवैतनिक परामर्शदाता एवं संचालक भी रहे। सन् 1949 ई० में आपको राजस्थान सरकार ने सांख्यिकी-विभाग का प्रधान अंक-अधिकारी नियुक्त किया। सन् 1956 तक आपने इस विभाग का कुशल संचालन तथा निर्देशन किया। 1950 ई० में आप मन्त्रालय की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण-कार्य से सम्बद्ध हुए और कृषि, अर्थशास्त्र, व्यापार तथा विधि आदि विशेष समितियों के सदस्य रहे। सन् 1964 में भारत सरकार ने आपको वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग में समाजशास्त्र, पुरातत्व, इतिहास, सुरक्षा इत्यादि विषयों के लिए सदस्य नियुक्त किया। आप संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त उर्दू, पंजाबी, बंगाली और मराठी आदि भाषाओं के भी ज्ञाता थे। पं० जगद्धर जी का प्रथम विवाह हरिपुर निवासी पं० गणेशदास बड़ू की पुत्री 'जयदेवी' से हुआ। विवाह के कोई पन्द्रह वर्ष पश्चात् उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। उनका दूसरा विवाह पटियाला के पाठक परिवार में श्रीमति विद्या देवी के साथ सम्पन्न हुआ। जगद्धर जी के—शार्ङ्गधर, श्रीधर और श्रीकर तीन पुत्र हैं। पं० जगद्धर शर्मा का 25 जुलाई सन् 1967 को हृदय गति रुकने से देहान्त हुआ।

श्रीमति विद्या देवी, गुलेरी जी की एकमात्र कनिष्ठ भगिनी हैं। इनका विवाह बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में नगरोटा बगवां[1] के श्रोत्रिय परिवार के श्री केशवराम जी से हुआ। इनके श्री त्रिविक्रम और सुदर्शन दो पुत्र हैं। श्रीमती विद्यादेवी धर्म-परायण और सनातनी विचारों की सुशील महिला हैं। वे अपने परिवार के मीठे और तीखे संस्मरणों को मन में संजोए हुए हैं। इन्हें संस्कृत-हिन्दी का अच्छा ज्ञान है। पहाड़ी लोकगीतों में भी इनकी अद्‌भुत गति है। श्रीमती विद्या देवी ने परिवार सम्बन्धी कई मूल्यवान संस्मरण भी सुनाए हैं। अपने परिवार के पुराने संस्मरण याद करके साश्रुनयना श्रीमति विद्या देवी आत्म-विभोर हो उठती हैं। कभी-कभी विह्वल होकर कहती हैं—"अपने इतने बड़े परिवार में मैं ही एक मात्र ठूंठ बच गई हूं।", जैसे उनके सामने चित्रपट की तरह अपने पिता, भाई-बहिनों के चित्र फलक पर उभरते-मिटते नजर आते हों। गुलेरी जी का स्मरण करके रोमांचित हो उठती हैं और फिर अवरुद्ध कण्ठ आंखों से बह निकलता है। श्रीमति विद्या देवी के साथ गुलेरी जी की बड़ी आत्मीयता और प्यार था। जब कभी गुलेर आते तो अपनी बहिन से मिलने अवश्य नगरोटा बगवां जाते। वे ज्येष्ठ भ्राता थे, अतः बहिन के घर में न जाते। घर से दूर किसी वृक्ष की छाया में अपनी बहिन को बुलाकर प्रेमपूर्ण बात-चीत करके लौट आते। श्रीमति विद्या देवी के पास गुलेरी जी के अनेक पत्र थे परन्तु उनके दिवंगत हो जाने का दारुण समाचार सुनकर वह व्याकुल हो उठीं थीं। गुलेरी जी से सम्बन्ध रखने वाली हर वस्तु जैसे उन्हें काटने को दौड़ती थी। कुछ समय के पश्चात् एक बार अत्यन्त सन्तप्त हो कर उन्होंने सभी पत्र जला दिये जैसे अपनी पीड़ा को होम दिया हो।[2] श्रीमति विद्या देवी को संस्कृत और हिन्दी मातृभाषा की तरह साध्य हैं। अब स्व० गुलेरी जी के दर्शन और उनके संस्मरण जैसे विद्या देवी जी में केन्द्रीभूत हो गए हैं।

1. नगरोटा बगवां तहसील पालमपुर में एक रमणीक पर्वतीय नगर है और पठानकोट-जोगिन्दर नगर रेलवे लाइन पर स्थित है।
2. श्रीमती विद्या देवी से नगरोटा बगवां में दिनांक 13-6-1968 को भेंट।

गुलेरी जी का अजमेर प्रवासकाल

गुलेरी परिवार की जानकारी प्राप्त करने के पश्चात उनके अजमेर प्रवास के विषय में कहना समीचीन प्रतीत होता है। वैसे गुलेरी जी के जयपुर प्रवास के अनेक संस्मरण हैं। यहीं पर उनके भावी जीवन का ताना-बाना बुना था। वे समाज के अनेक लोगों के सम्पर्क में आए थे। उनका सम्बन्ध जनसाधारण से लेकर राजदरबार तक था। वे केवल विद्याव्यसनी ही नहीं थे, अपितु अन्य सामाजिक कार्यों में भी भाग लेते थे। परन्तु उनके अजमेर जाने के साथ ही उनके जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ होता है।

पण्डित चन्द्रधर शर्मा ने अपने विद्यार्थी-जीवन ही में अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण ख्याति प्राप्त कर ली थी। हम इस बात का पहले भी उल्लेख कर चुके हैं कि उन्होंने घर में संस्कृत वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन किया था। ज्योतिष-मन्त्रालय की पुनर्स्थापना और जीर्णोद्धार के समय भी उन्होंने अपने अद्भुत ज्ञान का परिचय दिया। शैशवावस्था में संस्कृत में भाषण देकर भारत-धर्म-महामण्डल के सदस्यों को आश्चर्यचकित कर दिया। धार्मिक व्यवस्थाएं देने में पण्डितों की सहायता की। सन् 1903 ई0 में जब उन्होंने बी0 ए0 की परीक्षा में अपूर्व स्थान प्राप्त किया तब तो जैसे उनकी असाधारण प्रतिभा का डंका ही बज गया। महाराजा जयपुर से उनके सम्मानित होने पर विभिन्न समाचार पत्रों ने अपनी सम्मतियां प्रकट की थीं [1]।

परिणामस्वरूप सन् 1904 ई0 में जब खेतड़ी के अवयस्क राजा जयसिंह के लिए अभिभावक की आवश्यकता पड़ी तो गुलेरी जी को ही इस कार्य के लिए चुना गया। जैसा कि हम जानते हैं उस समय वह दर्शन-शास्त्र में एम0 ए0 की तैयारी कर रहे थे परन्तु महाराजा के आग्रह को न टालकर सन् 1904 ई0 के जून मास में वे राजा जय सिंह के अभिभावक और शिक्षक बनकर मेयो कालेज अजमेर गये।

गुलेरी जी का यह चयन जयपुर के रेजिडेंट कर्नल टी0सी0 पीअर्स आई0 ए0 की अनुशंसा से हुआ था। पीअर्स गुलेरी को अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का विद्वान मानते थे। यह तथ्य उनके गुलेरी जी को दिये गए प्रमाण पत्र से प्रकट होता है[2]।

इस प्रकार जून, सन् 1904 ई0 में गुलेरी जी ने एक अभिभावक और शिक्षक के रूप में शिक्षा-क्षेत्र में प्रवेश किया[3]। यहीं से उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत होने लगा।

अभिभावक के रूप में वे बहुत सफल रहे। उनके सदाचार और विनय ने राजा जय-सिंह के जीवन को रूपांतरित कर दिया, राजा जयसिंह भी अपने गुरू, पं0 चन्द्रधर जी की भांति ही अद्वितीय प्रतिभा से विभूषित थे[4]। गुलेरी जी के कुशल निर्देशन और व्यावहारिक जीवन-दर्शन से राजा जय सिंह में विनय और सौजन्य के अनुपम गुणों का

1. देखिए: वैश्योपकारक सन् 1904 ई0, वर्ष 1, संख्या 7, पृष्ठ 203।
2. देखिए: प्रमाण-पत्र।
3. देखिए: मेयो कालेज मैगजीन, अंक xviii, पृष्ठ 7।
4. शक्तिधर गुलेरी, गुलेरी जी की 'अमर कहानियां', द्वि0 सं0, पृष्ठ 6।

समन्वय हुआ। मेयो कालेज अजमेर के प्रिंसिपल और जयपुर हाउस के मोतमिद सभी गुलेरी जी की योग्यता, सौजन्य और सदाचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। उनके निष्कपट व्यवहार से सभी परिस्थितियां उनके अनुकूल होतीं। वे कुशल शिक्षक, सहृदय मित्र, विनम्र सेवक और महान् सहयोगी माने जाने लगे। मेयो कालेज अजमेर के सभी वर्गों से उन्हें हार्दिक सहानुभूति और सम्मान मिला, सभी लोग उनका आदर किया करते।

सन् 1907 में जब जयपुर-भवन के मोतमिद पद की प्रतिष्ठा बढ़ाई गई तो पं0 चन्द्रधर जी को ही मोतमिद नियुक्त किया गया। सरकारी सेवा में उनकी कार्यकुशलता और कर्त्तव्य परायणता का यह प्रथम पुरस्कार था। इस पद के लिए जब किसी योग्य व्यक्ति की खोज की जा रही थी तो राज्य परिषद् के सचिव ने गुलेरी जी के विषय में लिखा था—"... मेयो कालेज के राज-मोतमिद के पद की प्रतिष्ठा बढ़ाकर किसी योग्यतर व्यक्ति की नियुक्ति का प्रश्न काफी समय से दरबार के विचाराधीन रहा है। अब परिषद् ने खेतड़ी-नरेश के शिक्षक पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बी0 ए0 को इस पद के लिए चुना है और वे लाला मिट्ठाराम जी का स्थान ग्रहण करेंगे। पं0 चन्द्रधर सुशिक्षित हैं और उन्होंने अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा से मेयो कालेज के प्रिंसिपल को सदैव संतुष्ट रखा है और अब इनका इस संस्थान में यथेष्ट अनुभव भी हो गया है। अतः परिषद् को यह विश्वास है[1] कि मेयो कालेज के प्रिंसिपल भी इस चुनाव का समर्थन करेंगे।"

इस प्रकार आपने अक्तूबर, 1907 ई0 को जयपुर राज्य के राज-मोतमिद के पद का कार्यभार सम्भाला[2]। एक अधीक्षक के रूप में गुलेरी जी का अपूर्व प्रभाव रहा। वे अनुशासन के हामी थे और बड़ी कड़ाई से नियमों का पालन करते और करवाते थे। स्वभाव से वे जितने नम्र थे नियम पालन करवाने में उतने ही कठोर भी थे[3]। इस संदर्भ में एक घटना का उल्लेख पर्याप्त होगा। घटना इस प्रकार है—"एक राजकुमार किसी पेड़ के नीचे छिप कर मदिरा पान कर रहा था। अकस्मात् गुरूदेव उधर जा निकले। जैसे ही भयातुर होकर राजकुमार बोतल फेंक कर भागने लगा वैसे ही ठोकर खाकर गिर पड़ा। गुलेरी जी दूर निकल गए थे। उसकी घिग्घियां बंध रही थीं, बार-बार यही पूछ रहा था—"गुरूदेव ने मुझे देखा तो नहीं?"

जयपुर राज्य के समस्त सामन्तों की उन्होंने बड़ी योग्यता से देखभाल की। मेयो कालेज में काश्मीर के महाराजा हरि सिंह, प्रतापगढ़ के नरेश रामसिंह, ठाकुर रामसिंह (आर्मी मिनिस्टर, जयपुर), गाजीगढ़ के ठाकुर कुशल सिंह, रोहेट के ठाकुर दलपत सिंह प्रभृति शिष्यों पर इनकी बड़ी कृपा थी[4]। अधीक्षक के रूप में गुलेरी जी ने 'बज्रादपि

1. देखिए पत्र (अप्रकाशित)।
2. देखिए नियुक्ति-पत्र मोतमिद के रूप में।
3. रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, 'उसने कहा था' के अमर लेखक गुलेरी जी मेरे गुरू भाई थे, धर्मयुग, 12 जुलाई, 64 पृ0 33।
4. शक्तिधर गुलेरी, गुलेरी जी की 'अमर कहानियां' द्वि0 सं0, पृ0 5।

Scanned with CamScanner

कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' का उदाहरण प्रस्तुत किया, क्या मजाल कि कोई छात्र नियम भंग करे या किसी प्रकार की अनुशासनहीनता दिखाए। गुलेरी जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व से सभी राजकुमार विशेष प्रभावित थे। शिष्यों का इनके प्रति कितना आदर भाव और कितनी श्रद्धा थी, इसका अनुमान अनेक राजकुमारों द्वारा उन्हें लिखे गए पत्रों से लगाया जा सकता है। इन पत्रों में गुरू के प्रति आन्तरिक श्रद्धा और सहज समर्पण है।

गुलेरी जी ने लगातार नौ वर्ष तक मोतमिद के रूप में कार्य किया। अध्यापन में इनकी विशेष रुचि तो थी ही अतः जब वे जयपुर भवन के अधीक्षक थे तो स्वेच्छा से मेयो कालेज में अवैतनिक रूप से अध्यापन कार्य भी करते थे। इनकी शिक्षण विधि, योग्यता और कार्यकुशलता से छात्र तो प्रसन्न थे ही प्रिंसिपल भी मुग्ध हुए बिना न रह सके। परिणामस्वरूप सन् 1916 ई0 में महामहोपाध्याय पण्डित शिवनारायण जी के सेवा-निवृत्त होने पर प्रिंसिपल ने इन्हें कालेज के अध्यापन विभाग में आने का निमन्त्रण दिया[1]। प्रिंसिपल के प्रति आभार प्रकट करते हुए गुलेरी जी ने 17 अप्रैल, सन् 1916 को जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—'आपका 15 तारीख का पत्र कल ही प्राप्त हुआ। तदर्थ आपका बहुत 2 धन्यवाद, मैं कुछ महानुभावों से विचार-विमर्श करके और कुछ बातों को सोच-समझ कर शीघ्र ही इसका उत्तर दूगा। मैं पुनः आपकी कृपा के लिए आभारी हूं जो आपने मुझे यह पत्र लिखा" [2]।

गुलेरी जी जयपुर राज्य के वैतनिक मोतमिद थे अतः दो सरकारी पदों पर बने रहने की समस्या उपस्थित हुई। वे अधीक्षक का पद छोड़ना नहीं चाहते थे क्योंकि इससे उन्हें आर्थिक हानि होती थी। उधर प्रिंसिपल महोदय गुलेरी जी की योग्यता और शैक्षणिक कुशलता का सदुपयोग करना चाहते थे। विद्वता और गम्भीर-अध्ययन के कारण यही उपयुक्त था कि वे दोनों पदों पर बने रहें। अतः प्रिंसिपल ने जयपुर के रेजिडेंट से उनकी मेयो कालेज में नियुक्ति की अनुशंसा की और उनके दोनों पदों पर बने रहने के औचित्य और समुचित पुरस्कार पाने का अनुमोदन किया।

प्रिंसिपल महोदय का जयपुर के रेजिडेंट को लिखा निम्नलिखित अनुशंसा पत्र गुलेरी जी की अद्भुत कार्यकुशलता और अपूर्व योग्यता का परिचायक है[3]:—

सेवा में,

रेजिडेंट, जयपुर।

श्रीमन्,

विनम्र निवेदन है कि मेयो कालेज में संस्कृत अध्यापक का स्थान रिक्त है। अगर पण्डित चन्द्रधर जी के एक साथ दोनों पदों पर बने रहने में जयपुर दरबार को कोई आपत्ति न हो तो मैं उनकी नियुक्ति की सिफारिश करता हूं। पं0 चन्द्रधर जी को मेयो कालेज में कार्य करते हुए बारह वर्ष हो गए हैं और इस कालावधि में उन्होंने

1. देखिए: प्रिंसिपल वाडिंगटन का गुलेरी जी को पत्र, दिनांक 25 अप्रैल, 1916।
2. देखिए: गुलेरी जी की पर्सनल फाइल, मेयो कालेज अजमेर।
3. देखिए: प्रिंसिपल वाडिंगटन का पत्र, दिनांक 10 मई, 1916 ई0।

स्वेच्छा से विभिन्न श्रेणियों को भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाए हैं और सदैव संतोषप्रद परिणाम दिया है। मेरे विचार में उनका अध्यापन-कार्य जयपुर छात्रावास के अधीक्षक के कार्य में कोई बाधा नहीं डालेगा और उनकी उच्च शैक्षणिक योग्यता और मेयो कालेज तथा जयपुर दरबार की सेवा को ध्यान में रखते हुए मुझे ऐसा लगता है कि वे संस्कृत-अध्यापक के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

अतः मैं आप से कहूंगा कि कृपा करके आप इस प्रस्ताव को जयपुर दरबार के समक्ष रखें और प्रार्थना करें कि दरबार की महती कृपा होगी अगर पं0 चन्द्रधर की बतौर संस्कृत अध्यापक की नियुक्ति के निमित अनुमति प्रदान कर दी जाए"। "सी0 डब्ल्यू0 वाडिंगटन"।

इस प्रकार अपनी योग्यता और संतुलित व्यक्तित्व के कारण वे प्रिंसिपल के कृपा-पात्र बन गए थे। प्रिंसिपल की अनुशंसा पर उन्हें जयपुर-भवन के सुपरिण्टेंडेंट के साथ-साथ मेयो कालेज में संस्कृत के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर दिया गया। उन्होंने संस्कृत अध्यापक के रूप में 3 जुलाई, 1916 ई0 को विधिवत् कार्यभार सम्भाला और दोनों पदों के उत्तरदायित्व को बड़ी लगन, तन्मयता और चातुर्य से निभाया। यों भी गुलेरी जी के अत्यल्प जीवन काल का अधिकांश भाग मेयो कालेज अजमेर में अध्यापन कार्य करते हुए बीता[1]। यहां वे लगभग सत्रह वर्ष से भी अधिक रहे। यही, सन् 1904 से 1920 तक का समय गुलेरी जी के जीवन में महत्व का है। इसी समय में उन्होंने 'अमर कहानियां' लिखीं और उत्कृष्ट-साहित्य का भण्डार भरा। यही वह समय है जब उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया और हिन्दी की सेवा करने का व्रत लिया। भारतीय संस्कृति की महत्ता को नए रूप में प्रस्तुत किया। पुरातत्व सम्बन्धी खोज की। भाषा-विषयक-विवादों का खण्डन करते हुए 'पुरानी हिन्दी' लेख-माला प्रारम्भ की। ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों पर मार्मिक निबन्ध लिखे। 'इण्डियन एंटिक्विटी' में विशिष्ट विषयों पर ऐतिहासिक टिप्पणियां लिखीं। जयपुर से "समालोचक" निकाला और नागरी-प्रचारिणी

1. *Indian Assistant Master.*

May College: permanent

100-20-200 3 July, 1916 2 July, 1917.
120-20-290 3 July, 1917 2 July, 1918.
140-20-200 3 July, 1918 31 December, 1919.

Nearest Grade of new scale

224 (140-28 P 280) 1st July, 1920, 31 December. 1920.
252 (150-28-280) 1st Jannary, 1921, 10 Februaıy, 1921.
220 (140-28-280) 1st January, 1932, 10 February, 1922.

(Service lent by the Banaras Hindu University with effect from 11th February, 1922 for two years and six months).

[गुलेरी जी की सेवावधि का लेखा-जोखा, मेयो कालेज अजमेर में उनकी सेवा-पंजिका से प्राप्त]।

सभा काशी की मुख्य पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का सम्पादन किया । नागरी प्रचारिणी सभा की देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक-माला' और 'सूर्य कुमारी पुस्तक माला' का भी सम्पादन किया । इस सब के फलस्वरूप गुलेरी जी की गणना पुरातत्व, भाषा-शास्त्र, प्राचीन इतिहास, वैदिक संस्कृत, पाली तथा प्राकृत के श्रेष्ठतम विद्वानों में होने लगी ।

सन् 1922 में गुलेरी जी को विद्वान-पारखी पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय काशी बुला लिया, उनके काशी स्थित जीवन-काल पर कुछ लिखने से पूर्व उनके वैवाहिक जीवन के विषय पर प्रकाश डालना आवश्यक ज्ञात पड़ता है ।

वैवाहिक जीवन

यह पहले ही कहा जा चुका है कि गुलेरी जी का विवाह उनके बी0 ए0 उत्तीर्ण करने के पश्चात् कोई 20–21 वर्ष की आयु में श्रीमति पद्मावती से हुआ था । इनका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी था । इन की पत्नी सुन्दर, सुशील और सुपठित थीं, गुलेरी जी ने अपनी सौम्यता और प्रेम से अपनी पत्नी को जीत लिया था । जिससे उन्हें जीवन में कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई । वे पितृभक्त थे अतः अपने अजमेर प्रवास-काल में भी इन्होंने अपने पूरे परिवार को जयपुर ही में रखा था । जिससे वे अजमेर से उनकी अच्छी देख भाल कर सकें ।

पं0 चन्द्रधर शर्मा के कुल चार सन्तानें हुईं—दो पुत्र और दो पुत्रियां । इनके नाम इन्होंने क्रमशः योगेश्वर, शक्तिधर, अदिति और विजया रखे । श्री योगेश्वर जी का विवाह श्रीमति शकुन्तला देवी से नैहरन पुख्खर[1] में हुआ । योगेश्वर जी का यौवन काल ही में देहान्त हो गया । आप प्राध्यापक थे । इनको उत्तर-प्रदेश से 'हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियां' लिखने पर पुरस्कार भी मिला ।

श्री योगेश्वर के तीन पुत्र—सुधीर, जयधर और विद्याधर हुए । दुर्भाग्यवश सुधीर और जयधर का किशोरावस्था ही में देहावसान हो गया । विद्याधर एक अध्यापक के रूप में सरकारी सेवा में हैं ।

गुलेरी जी के द्वितीय पुत्र शक्तिधर अपने पिता जैसे ही मेधावी थे जिन्होंने एम0ए0 (अंग्रेजी) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया और प्रयाग विश्वविद्यालय से प्राचीन लिपियों पर शोध कर रहे थे । इन्होंने उद्योग करके गुलेरी जी की बिखरी पड़ी कहानियों को 'गुलेरी जी की अमर कहानियां' पुस्तक में संकलित भी किया । दुर्भाग्यवश वे भी दीर्घजीवी नहीं हुए ।

इनकी बेटी अदिति का बाल्यकाल ही में स्वर्गवास हो गया था । विजया का विवाह पालमपुर तहसील (कांगड़ा) के श्री श्यामाचरण बैदवा से हुआ । यह विवाह स्वयं गुलेरी

1. नैहरन पुख्खर, तहसील देहरा जिला कांगड़ा का एक गांव है जो गुलेर गांव से लगभग 24–25 किलोमीटर है ।

जी ने अपने हाथों किया था[1] । विवाह के कुछ समय पश्चात् ही विजया का भी देहान्त हो गया था ।

आज गुलेरी जी का कुल उनके एकमात्र पौत्र श्री विद्याधर से दीप्त है ।

हिन्दु विश्वविद्यालय में प्राच्य-विभाग के अध्यक्ष

मेयो कालेज अजमेर में उनकी कार्य-दक्षता और योग्यता की धाक के कारण उनका यश-सौरभ दूर-दूर तक फैल गया । महामना मदन मोहन मालवीय आदि भी प्रभावित हुए और उन्हें अपने यहां लाने का लोभ संवरण नहीं कर सके ।

महामना मदन मोहन मालवीय हिन्दू-विश्वविद्यालय काशी के लिए स्थान-स्थान पर घूम कर धन एकत्र कर रहे थे । उसी सम्बन्ध में उनका गुलेरी जी से परिचय हुआ था । इस काम में गुलेरी जी ने मालवीय जी की पर्याप्त सहायता की और बिपुल धनराशि एकत्र करवाई । उस समय मालवीय जी गुलेरी जी की विद्वत्ता और साहित्यिक पैठ से प्रभावित हुए । उन दिनों वे हिन्दू-विश्वविद्यालय में देश के कोने-कोने से चोटी के विद्वानों को बुला रहे थे । उन्होंने गुलेरी जी को कई बार काशी विश्वविद्यालय में आने का निमन्त्रण दिया किन्तु गुलेरी जी टाल मटोल करते रहे । सन् 1921 में मालवीय जी का आग्रह इतना बढ़ गया कि उन्हें इस विषय पर विचार करने को बाधित होना पड़ा ।[2]

अब गुलेरी जी ने इस विषय में गम्भीरता से विचार करना आरम्भ किया, मालवीय जी ने पुनः लिखा[3]—"बिहार सरकार पं0 रामावतार की सेवाएं अधिक समय तक नहीं दे रही है । मैं विश्वविद्यालय की परिषद् को सलाह दूंगा कि पं0 रामावतार को जुलाई के मध्य तक वापिस भेज दिया जाए और प्रस्ताव करूंगा कि आपको 350–20–500 अर्थात् 350 रुपये से 20 रुपये की वार्षिक वृद्धि के साथ 500 रुपये के वेतनमान में एक वर्ष की परिवीक्षा पर नियुक्त कर दे । यह एक वर्ष का 'प्रावेशन' आप और विश्वविद्यालय, दोनों के लिए हितकर है और साधारणतः नयी नियुक्तियों के समय ऐसा किया भी जाता है । मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि आपने अपने पूर्व-पत्र में आरम्भ में "डैपूटेशन" पर आने को कहा था । अगर ये शर्तें आपको स्वीकार हैं, आशा है होंगी, तो मुझे इस विषय में तार अथवा वापसी डाक से सूचना दें । कृपया यह भी लिखें कि आपको उधार लेने के लिए किसे लिखना है ? मैं आशा करता हूं कि मेयो कालेज भारत सरकार के अधीन है और पर्यवेक्षक के रूप में भी आपकी सेवा 'पेन्शनेबल' है । मैं समझता हूं कि जिन दो सेवाओं के अधीन आप कार्य कर रहे हैं उन दोनों को ही लिखना पड़ेगा ।"

यह पत्र पाकर गुलेरी जी असमंजस में पड़ गए । उनके सामने कई समस्याएं खड़ी हो

1. देखिए: अदिति के विवाह का निमन्त्रण-पत्र
2. देखिए पं0 मदन मोहन मालवीय जी का गुलेरी जी के नाम पत्र, शान्ति कुटि, शिमला, जून 19, 1921 ।
3. देखिए: प0 मदन मोहन मालवीय जी का गुलेरी जी के नाम पत्र (अंग्रेजी में), शान्ति कुटि शिमला, 1–7–1921 ।

1975

Scanned with CamScanner

गई। एक तो जयपुर राज्य से छुट्टी लेनी थी और दूसरे भारत सरकार से 'डेपूटेशन' पर आने की अनुमति प्राप्त करनी थी। दोनों समस्याएं प्रिंसिपल मेयो कालेज की कृपा से ही हल हो सकती थीं। मालवीय जी का दूसरा पत्र पाकर उन्होंने काशी जाने का निश्चय तो कर ही लिया था। इसी बीच उन्हें मालवीय जी के तार और पत्र मिले जिन में शीघ्र से शीघ्र काशी पहुंचने का आग्रह था। इस पर उन्होंने मालवीय जी को यह तार दिया—"तार के लिए बहुत बहुत धन्यवाद। कृपया तार से पता दीजिए कि मुझे अधिक से अधिक कब तक आ जाना चाहिये? छुट्टी नहीं है; अवैतनिक छुट्टी लेने के प्रयत्न में हूं।"[1] मालवीय जी चाहते थे कि वे अविलम्ब विश्वविद्यालय का काम सम्भालें। इसीलिए इन्होंने अतिशीघ्र पहुंचने का तार दिया[2]।

गुलेरी जी ने छुट्टी का प्रबन्ध कर लिया और तैयारी भी पूरी कर ली परन्तु मालवीय जी के अन्तिम उत्तर की प्रतीक्षा होने लगी। उधर पण्डित रामावतार जी ने बिहार सरकार से दो वर्ष का और अवकाश मांग लिया, इससे उनके जाने में फिर बाधा उपस्थित हो गई। गुलेरी जी को अपनी छुट्टी रद्द करानी पड़ी। उधर बिहार सरकार ने पं० रामावतार को अवकाश न दिया। अब मालवीय जी ने गुलेरी जी को लाने के लिए फिर तत्परता दिखानी आरम्भ की और आखिर अक्तूबर, 1921 में गुलेरी जी की नियुक्ति पर मालवीय जी ने उन्हें बधाई का पत्र लिखा[3]।

गुलेरी जी को अब फिर छुट्टी का प्रबन्ध करना पड़ा। इस बीच में मालवीय जी के अनेक पत्र और तार आए। गुलेरी जी ने वेतन-वृद्धि सम्बन्धी समस्या उठाई। उसका भी समाधान हुआ। मालवीय जी ने गुलेरी जी की सेवाओं को उधार लेने के लिए जयपुर राज्य और भारत सरकार से अनुमति प्राप्त कर ली। परन्तु इन सब बातों में काफी देर लगी और अन्त में 6 सितम्बर, 1921 को गुलेरी जी ने मालवीय जी को लिखा—

1. देखिए: गुलेरी जी का तार, दिनांक 11–7–1921।

2. Wish you should join earliest practicable date. Session begins sixteenth Malaviya (12 July, 1921).

Simla, 10th October, 1921

3. My dear Chandradhar ji,

I am glad to be able to write you that XXXX Council of the Benaras Hindu University has appointed you to fill Manindra Chandra Nandy Chair as Professor of Ancient History and Culture and to officiate as the Principal of the College of Oriental learning XXXXI hereby Congratulate you on the opportunity which this offer affords you of rendering distinguishable service to the cause of our Ancient learning and religion. Presuming, in view of our previous correspondence, Your acceptance of offer. I am writing to the Govt. of India for a loan of your services. I hope to be here for a few days more. Trusting you are well.

Yours Sincerely,
M. M. Malaviya,
Vice-Chancellor.

Chandra Guleri,
Mayo College, Ajmer,

"प्रिय मालवीय जी महाराज,[1] आपके दो तथा तीन तारीख के तार तथा पत्र मिले। मैंने आपकी सुविधानुसार सरकार को लिखा है कि मुझे यह प्रस्ताव स्वीकार है परन्तु इस शर्त पर कि अगर मैं चाहूं तो अठारह महीनों के पश्चात् मेयो कालेज को लौट सकता हूं। ज्यों ही स्वीकृति मिलेगी और मुझे मुक्त कर दिया जाएगा मैं बनारस आ जाऊंगा। मेरी बहुत सी समस्याएँ आपके पत्रों से हल हो गई हैं। मैंने वेतन विषयक जो बातें लिखी थीं उनका आपने एक ही पक्ष देखा है फिर भी आपने ठीक हल सुझा दिया है। केवल जयपुर वाली एक समस्या थी उसका भी आपके पत्र से हल हो गया और आज की डाक से मुझे पता लगा है कि मेरी छुट्टी भी स्वीकृत हो गई है। साभिनन्दन और क्षमायाचना सहित, आपका अपना, चन्द्रधर शर्मा।"

गुलेरी जी ने फरवरी, 1921 को बनारस जाने का मुहूर्त निकलवा लिया था परन्तु दैवयोग से उनकी पुत्री का देहान्त हो गया इसलिए उन्होंने उस समय जाना स्थगित कर दिया। वे विश्वविद्यालय का कार्यभार 10 फरवरी, 1921 को ही सम्भाल पाए। उनके बनारस पहुंचने पर मालवीय जी को भी तृप्ति हुई। इस प्रकार वे हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य-विभाग (ओरियन्टल लर्निंग) के प्राचार्य और पुरातन-इतिहास और धर्म की मुनीन्द्र चन्द्र नन्दी चेयर के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

गुलेरी जी का महाप्रयाण

काशी पहुंच कर गुलेरी जी ने प्राच्य-विभाग का पुनर्गठन कार्य आरम्भ किया। विभाग के लिए भवन-निर्माण और छात्रावास की योजनाएं बनाईं। संस्कृत प्राध्यापकों के वेतनमान दूसरे विभागों से अपेक्षाकृत न्यून थे, उन्होंने सभी विभागों के समान वेतनमान कराने का श्रेय प्राप्त किया। योग्य अध्यापकों की नियुक्तियां करवाईं। प्राचीन इतिहास और धर्म सम्बन्धी विषयों का उचित विभाजन करके उनके शिक्षण की व्यवस्था की। गुलेरी जी ने विभाग की सफलता के लिए अपने शरीर तक का ध्यान भी भुला दिया था[2]। वे बड़े परिश्रमी और अथक कार्यकर्त्ता थे। कुछ ही दिनों में उन्होंने प्राच्य-विभाग का कायाकल्प कर दिया। छात्र, अध्यापक और विश्वविद्यालय के अधिकारी सभी उनसे बहुत प्रसन्न थे। परन्तु विधाता को कुछ और ही मन्जूर था।

गुलेरी जी को काशी जाना फला नहीं, जिन भावनाओं को लेकर वे काशी गए थे वे सब बातें धरी की धरी रह गईं। काशी पहुंचने के कुछ समय पश्चात् उन पर विपत्तियां टूटने लगीं। हमने यह तो पहले ही कहा है कि जिस दिन वे अजमेर से काशी प्रस्थान करने ही वाले थे कि उनकी कन्या का देहान्त हो गया। गुलेरी जी अध्यात्मवादी थे

1. देखिए: चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का पत्र (अप्रकाशित) पं० मदन मोहन जी मालवीय के नाम, दिनांक अजमेर, 6–12–1921 (मूल अंग्रेज़ी में)।

(2) (क) रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, 'उसने कहा था' के अमर लेखक गुलेरी जी मेरे गुरू भाई थे, धर्मयुग 12 जुलाई, 1964, पृष्ठ 33।

(ख) गुलेरी जी के सहयोगी श्री काली प्रसाद मिश्र से दिनांक 16–5–1969 ई० को बनारस में लेखक की भेंट।

अतः किसी तरह अपने संतप्त हृदय को समझा बुझा कर वे शीघ्र ही काशी चले आये थे। परन्तु कन्या का देहान्त जैसे उनकी भावी विपत्तियों और शोक-संतापों का सूचक था।

काशी पहुंचकर अभी वे व्यवस्थित भी न हो पाए थे कि अपने मध्यम भ्राता श्री सोम देव जी के आकस्मिक देहान्त का दारुण समाचार मिला। हमने यह पहले ही स्पष्ट किया है कि 'ज्येष्ठ' (गुलेरी जी) और 'मध्यम' (सोम देव जी) का अगाध प्रेम था। इसे सुनकर जैसे उन पर पहाड़ टूट पड़ा हो! उन्हें भारी मन से जयपुर जाना पड़ा, भ्रातृ-वियोग गुलेरी जी के लिए असह्य था। उन दिनों वे व्याकुल और शोक-संतप्त रहने लगे, सोमदेव जी ने जयपुर रहते हुए घर का सारा काम काज संभाला हुआ था। अब उसका उत्तरदायित्व उन्हीं पर आ पड़ा। इसके साथ ही उनका मन संसार से विरक्त हो। गया वे स्वय को समझाने में असमर्थ रहे, एक पत्र में लिखते हैं—'*****श्री-मति को मैं कई बार निवेदन कर चुका हूं कि मेरे दुर्भाग्य ऐसे हैं कि जो मुझसे स्नेह करता है उसे कष्ट होता है तथा मेरे पाप-भार से वह बंधता है ***** ठा. साहब बिसाऊ ने मुझे बुलाया तो भी उन्हें एक ही दिन में चिन्ता और व्यग्रता से भेजना पड़ा। पूर्ण वृत्तान्त पीछे निवेदन करूंगा, इस समय दुःखावेग अधिक है, जान बूझकर भी अज्ञान मोह में फंसा हुआ हूं, मेरा जयपुर का घर उजड़ गया तथा यह विपरीत कालक्रम समझ में नहीं आता कि मेरे सामने मेरा छोटा भाई कैसे उठ गया? भवतु, ईश्वरेच्छा प्रबल है?[1]"

गुलेरी जी खिन्न रहने लग गए। अपने भतीजे क्षेमेन्द्र (सोमदेव जी के पुत्र) की भी चिन्ता थी, ऊपर-ऊपर से प्रायः यही कहा करते "अब मेरा जीना और स्वस्थ रहना बहुत जरुरी हो गया है क्षेम व 'मध्यमा' का अब कौन है?"[2] परन्तु उनका अन्तर जैसे जीने से उमस गया था। नियति का चक्र भी उलटा ही चला, सोमदेव जी के देहान्त के कोई अढ़ाई मास बाद उनकी छोटी भाभी[3] का भी काशी ही में स्वर्गवास हो गया। दुख रूपी घाव पर चोट पर चोट लगती गई दर्द टीस में बदलता गया। भाग्य के इन थपेड़ों को वे मोन हो कर सहते गये।

इस से कुछ समय पूर्व गुलेरी जी पर पीलिया रोग का भयंकर आक्रमण हुआ था।[4] वे सूखकर कांटा से हो गए थे। उनके वस्त्र तक पसीने से पीले हो जाते थे। परन्तु कुछ समय के अनन्तर अपने आत्मबल से पुनः नीरोग हो गए थे। धीरे-धीरे शरीर में शक्ति भी आती गई और वे पहले जैसे हृष्ट पुष्ट हो गए। हम यहां यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि कई लेखकों ने इस पीलिया रोग से गुलेरी जी का देहान्त होना बताया है, लेकिन यह गलत है[5]। पीलिया रोग का आक्रमण अन्तिम रोग से कुछ मास पूर्व हुआ था जिसके

(1) बाई जी लाल (महारानी शाहपुरा) के नाम लिखे गए गुलेरी जी के पत्र से।
(2) स्व0 योगेश्वर गुलेरी, गुलेरी जी के अन्तिम क्षण, नया समाज, वर्ष 2, खण्ड 4, अंक 6, जून 1950—पृ0 427।
(3) जगधर जी की प्रथम पत्नी-जय देवी।
(4) श्री रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, धर्मयुग, 12 जुलाई, 1964 पृष्ट 33,
(5) ——————वही——————

पश्चात वे पूर्ण स्वस्थ हो गए थे[1]। इस रोग का कारण भी मानव स्वभाव की कुटिल प्रवृत्ति था, गुलेरी जी के मान-सम्मान से कुढ़ कर किसी ईर्ष्यालु ने उन्हें कोई ऐसी चीज खिला दी जिससे कि उन्हें पीलिया हो गया था। वस्तुतः उनकी मृत्यु का कारण भ्रातृ-–वियोग ही था जिसने उनके हृष्ट-पुष्ट दिखने वाले शरीर के भीतर छिपे हृदय को खोखला कर दिया था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि सोमदेव जी के देहान्त के पश्चात् उनकी छोटी भाभी का देहान्त हो गया था। तदनन्तर उनकी भतीजी स्वर्ग सिधार गई और इसी बीच सोमदेव जी का एक बालक भी चल बसा था। वे पूरी तरह से शोक-सागर में निमग्न हो गए।

गुलेरी जी के अन्तिम रोग की एक विचित्र कहानी है। देहावसान के ठीक सोलह दिवस पूर्व, वे अपनी भाभी के अन्तिम संस्कार में मनिकर्णिका घाट पर गए हुए थे। तब उनका शरीर कुछ ढीला था। अतः उन्होंने गंगाजल से आचमन ही किया, स्नान नहीं। पंडित पद्मनाभ—(भाभी के भाई) ने क्रोधित होकर कहा, "*****क्या तुम नहाओगे नहीं? जान पड़ता है तू ब्रह्म-राक्षस है।" पद्मनाभ-महाक्रोधी ब्राह्मण था। गुलेरी जी सनातनी विचारों के अनुयायी थे। अतः अगर उन्हें श्मशान में नहाना होता तो वस्त्रों सहित नहाते। पद्म-नाभ की बात से उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा – "अरे चाण्डाल! जो तू मेरे प्राण लेना चाहता है तो ले[2]।" इन शब्दों के साथ वे वस्त्रों समेत गंगा में कूद गए, उसी दिन से गुलेरी जी को हल्का-हल्का ज्वर रहने लगा। किन्तु उन्होंने विश्वविद्यालय के कार्य में ढील नहीं आने दी। भाभी के उत्तर-कृत्य भी किये और दुख के घूंट भी पिये। चिन्ताओं से मस्तिष्क सीया। अपने शरीर की परवाह किये बिना नंगे सिर, नंगे पैर भेलूपुरा से विश्वविद्यालय जाते और कड़कती धूप में वापिस आते। मानसिक संताप को कम करने के लिए उन दिनों लिखा भी अधिक करते थे। भोजन की तो उन्हें बिल्कुल परवाह ही न थी। बिना छोंका भोजन और वह भी एक बार लिया करते और इस पर अगर उनकी श्रीमती उन्हें स्वास्थ्य का ध्यान रखने को कहतीं तो अपना हृष्ट-पुष्ट शरीर दिखाकर उन्हें चुप करा देते। न जाने क्या बात थी कि उन दिनों वे कुछ स्वस्थ भी अधिक दिखाई देते थे। किसे पता था कि यह दीपक की बुझने से पहले की जगमगाहट है?

उनका बुखार तेज होता गया। चिकित्सा शुरू हुई परन्तु 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों

(1) गुलेरी जी की कनिष्ट भगिनी श्रीमती विद्यादेवी से भेंट, दिनांक 13 जून, 1968 ई0, स्थान नगरोटा बगवां (कांगड़ा)।

(2) श्रीयुत राय कृष्ण दास जी से भारत-कला-भवन वाराणसी में दिनांक 14-6-1969 को भेंट।

(ख) गुलेरी जी के शिष्य श्री महेश्वरानन्द जी से धर्म संघ, दुर्गा कुण्ड काशी में भेंट वार्ता-दिनांक 16-6-1969 ई0।

(6) स्व. योगेश्वर गुलेरी, गुलेरी जी के अन्तिम क्षण, नया समाज, कलकत्ता, वर्ष 2, खण्ड 4, अंक 6 जून, 1850, पृष्ठ 427।

ज्यों दवा की । उस रात महामना मदन मोहन मालवीय जी भी आए । उन्होंने साव-धानी रखने को कहा । माता के संकेत पर योगेश्वर जी ने थर्मामीटर लगाया, बुखार 104° था । डाक्टर साहिब ने कुनैन दी । शाम को बुखार उतरना शुरू हुआ, तीसरे दिन प्रातः लगभग नार्मल था । सब लोग बेफिक्री से अपने-अपने काम में लग गए । योगेश्वर स्कूल चले गए । परन्तु ज्यों ही योगेश्वर दोपहर को स्कूल से लौटे कि गुलेरी जी का बुखार फिर 105 डिग्री हो गया । योगेश्वर घबराकर डाक्टर अमर-नाथ झा की ओर भागे । डाक्टर दुकान पर नहीं थे । भूखे-प्यासे सरपट सड़क पर दौड़े जा रहे थे कि सामने से डाक्टर साहिब कार में आते दिखाई दिये । योगेश्वर जी के संकेत पर उन्होंने कार रोकी । वस्तुस्थिति समझकर वे गुलेरी जी के मकान पर पहुंचे । परीक्षा के बाद दवाई दी, हालत कुछ सुधरी ।

सायंकाल को ज्वर फिर बढ़ना शुरू हुआ, प्रलाप होने लगा रात के दस बज गए थे । गुलेरी जी की श्रीमती उनकी बिगड़ती हालत को देखकर घबरा उठीं । अपनी पुत्री को साथ लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के यहां पहुचीं । शुक्ल जी ने तत्क्षण 'बंगाली टोले' के एक प्रसिद्ध डाक्टर को साथ भेजा और कुछ देर बाद स्वयं भी पुत्रों समेत पहुंच गए, । डाक्टर साहिब ने मलेरिया बताया किन्तु कहा कि अब 'ब्रेन फीवर' भी हो गया है । डाक्टर की मुद्रा देखकर गुलेरी जी की बड़ी पुत्री ने योगेश्वर जी को संकेत से कहा, "यह डाक्टर बुरा मानेगा । चुपचाप भागकर सिविल-सर्जन को बुलाकर ले आ । वे न मिले तो जो भी डाक्टर मिले, जितने भी डाक्टर मिलें सब को ले आ, जा मुन्नू, जल्दी कर" ।

योगेश्वर जी के पैरों में जैसे पहिये लग गए हों । सड़क पर भागने लगे । रात्रि के बारह बज रहे थे । सौभाग्य से तांगा मिल गया । अर्ध-रात्रि की इस नीरवता में सड़क पर तांगा दौड़ रहा था और योगेश्वर अपने मन में सोच रहे थे "जब 'बड़ा भाऊ'[1] ठीक हो जाएंगे तो मैं कहूंगा—"बड़ा भाऊ! मैंने यह किया, वह किया । ऐसे किया, वैसे किया ।"

अब की बार परीक्षा करने के अनन्तर सिविल सर्जन गंभीर हो गए । 107° ताप । दोनों डाक्टरों ने नंगा करके बर्फ पर लिटाने की राय दी । योगेश्वर फिर तांगा लेकर बर्फ़खाने गए और दो मन की दो सिल्लियां उठा लाए, गुलेरी जी को उन सिल्लियों पर लिटाया गया, बाद में जब उन्हें तौलिए से पोंछकर बिस्तर पर लिटाने लगे तो वे होश में आ गए । एकदम झटके से "हटो" कहकर, इससे पहले कि कोई उनसे कुछ कहता, वे पार्श्व में पड़े कुशासन पर जा बैठे । कोई क्षण भर भक्ति हुई । ध्यान लगा, "विजय चन्द्र"[2]! गीता सुनाओ"—कहकर वहीं लेट गए । प्रलाप चल रहा था—

(1) गुलेरी जी अपने परिवार में ज्येष्ठ थे अतः सभी भाई-बहिन उन्हें 'बड़ा भाऊ' (पहाड़ी में) कहकर बुलाते थे, उसी अनुकरण से उनके बच्चे भी उन्हें 'बड़ा भाऊ' ही कहते थे ।

(2) श्री विजय चन्द्र वेद पाठी—क्वीन्स कालेज में कर्मकांड तथा वेद के प्राध्यापक थे और गुलेरी जी के शिष्य थे ।

'राजनि कमल........आदि' टीकाओं का खंडन हो रहा था । विद्वानों से शास्त्रार्थ किया जा रहा था । पक्ष के समर्थन के लिए तर्क दिये जा रहे थे - शब्दों को सुनकर विजय चन्द्र जी ने योगेश्वर जी से कहा था—'ये शतपथ ब्राह्मण पर एक जर्मन विद्वान की टीका का खंडन कर रहे हैं । मुझसे पिछले सप्ताह इस बारे में बातें हुई थी[1] ।'

विजय चन्द्र जी चुप रहे । थोड़ी देर बाद जब गुलेरी जी ने फिर डांट कर कहा—"विजय चन्द्र! गीता सुनाओ" तो रोती हुई आवाज़ में उन्होंने विराटरूप-दर्शन का पाठ आरंभ किया । फिर गुलेरी जी अपनी पुत्री से बोले—"विजया ! रुद्राक्ष ले आ ।" भोली लड़की रूद्राक्ष की माला उठा लाई । गुलेरी जी अन्तिम हंसी हंसे और पुत्र से कहा—"योगा ![2] जा मेरे कैश-बक्स में अनबिंधे रुद्राक्ष रखे हैं, सिरहाने से चाबी ले ले ।" योगेश्वर जी रुद्राक्ष ले आए । विजयचन्द्र जी ने गुलेरी जी के संकेत पर रुद्राक्ष उनकी चोटी में बांध दिया कुछ समय तक वे निश्चेष्ट पड़े रहे । बाहिर बहुत से लोग एकत्र हो गए थे । उनकी पुत्री ने टैम्परेचर लिया । 109 डिग्री से भी ऊपर था । गुलेरी जी ने आंखें खोल दी, गऊ-दान हुआ, स्वर्णदान हुआ और न जाने क्या-क्या हुआ ? बालक योगेश्वर मशीन की भांति सब कुछ किये जा रहे थे परन्तु समझ कुछ भी न पा रहे थे ।

गुलेरी जी ने नेत्र बन्द कर लिए । विजय चन्द्र ने झुक कर ज़ोर से उनके कानों में कहा—'ऊं नमः शिवाय च"। गुलेरी जी का यह प्रिय मंत्र था । उन्हों ने ज़ोर से एक हिचकी ली और सदैव के लिए आंखें खोल दीं । उस समय प्रातः के चार बज रहे थे । इस प्रकार हिन्दी संसार का यह भास्कर स्वल्प समय चमत्कृत होकर 22 सितम्बर, सन् 1922 को अल्पायु में अस्त हो गया । उस समय वे उनतालीस वर्ष दो महीने और पांच दिन के थे ।

"जाकी इहां चाहना है, ताकी उहां चाहना है ।
जाकी इहां चाह ना है, ताकी उहां चाह ना । "

—सिविल लाइंस, धर्मशाला, (हि0 प्र0)

(1) स्व0 योगेश्वर गुलेरी जी के अन्तिम क्षण, नया समाज, कलकत्ता, वर्ष 2, खंड 4, अंक 6 जुन, 1950.

(2) योगेश्वर जी का लाड-प्यार का छोटा नाम ।

Scanned with CamScanner

हिमाचल प्रदेश के लोक-वाद्यों का वर्गीकरण

—राम दयाल 'नीरज'

"हिमाचल प्रदेश लोक-गीत, लोग-नृत्य और लोक-संगीत की धरती है "—कहते तो सभी हैं किन्तु इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये जो कुछ आज तक इधर-उधर प्रकाशित या प्रसारित हुआ वह नहीं के बराबर है । कुछ कार्य लोक-गीतों के संग्रह का किया गया , किन्तु हिमाचल बनने के पश्चात् छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की इस लम्बी अवधि को आंकते हुए यह कार्य भी नाम-मात्र ही लगता है । शोध-ग्रथों में संग्रहित सामग्री आखिर होती भी कितनी ? लोक-गीतों के गीति अथवा गान पक्ष को ले कर भी कोई विशेष काम नहीं हुआ । किसी सरकारी पत्रिका में वर्ष में बारह गीतों की स्वर-लिपियां प्रकाशित कर देना अथवा किसी व्यक्ति द्वारा इस विषय में केवल एक पुस्तक प्रकाशित करवा देना काफी नहीं कहा जा सकता । लोक-नृत्यों को लेकर भी फुटकर लेख इधर-उधर लिखे गये जिनमें कोई ठोस सामग्री उपलब्ध नहीं होती । रही लोक-वाद्यों की बात —इस विषय पर तो शायद किसी का ध्यान ही नहीं गया ।

जिस प्रदेश में वर्षों से कला एवं संगीत महा-विद्यालय कार्य कर रहा हो, जिस प्रदेश में सैंकड़ों अध्यापक हिमाचल के विद्यार्थियों को लगातार संगीत शिक्षा प्रदान कर रहे हों, जिस प्रदेश में लोक-संगीत के दावेदार बैठे हों, उस प्रदेश में वहां के लोक-संगीत पर लिखने वाला खोजने पर भी न मिले, यह एक विडम्बना नहीं तो क्या हो सकता है ?

कला और संस्कृति का मात्र स्मरण करने से कला और भाषा की सेवा हो जायेगी क्या ? हिमाचल प्रदेश की कला अपने मर्मज्ञों की बाट आज तक जोह रही है—न जाने वह कब अजाने में ही दम तोड़ दे !

—लेखक

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते"। गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों कलाओं की सामूहिक संज्ञा संगीत है । संगीत के इन मूलभूत तत्वों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि इन तीनों का आधार स्वर तथा लय है, जो नाद और गति का ही परिष्कृत रूप है । संगीत के इन तीनों मूल-तत्वों को अपना सहचारी बनाने के कारण वाद्य-कला वास्तव में पूर्ण रूप से संगीत की प्रतिनिधि कला है । इस में गायन की भांति न तो छन्दोबद्ध रचना की आवश्यकता है और न ही नृत्य के समान अङ्ग संचालन की । वाद्य कला किसी अन्य कला का आश्रय नहीं लेती । यह कला नृत्य और गायन कला की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और अकृत्रिम है। वैसे गायन कला जब काव्यापेक्षी नहीं रहती तो वह भी लगभग वाद्य-कला के समीप पहुंच जाती है तथा लय के पूर्ण आधिपत्य में आ जाती है । ऐसी अवस्था में गीत के शब्द अपना अर्थ संगीत-स्वरों में पूर्णतया खो देते हैं ।

नृत्य-कला में संगीत का लय पक्ष ही सर्वोपरि होता है, यद्यपि इस में कभी कभार स्वर-वाद्यों का प्रयोग भी किया जाता है । यह कला वास्तव में नाट्य और संगीत (गायन) की सन्धि में पनपती है । एक ओर वह भाव-भंगिमा के लिए नाट्य की मुखापेक्षी है तथा दूसरी ओर इसे लय और ताल के लिये संगीत की बाट निहारनी पड़ती है । संगीत की दृष्टि से नृत्य-कला एकांगी है । इसे केवलमात्र लय का ही आधार प्राप्त है । क्योंकि गायन अथवा गीत और नृत्य-कला को क्रमशः काव्य और नाट्य कला का सहयोग भी लेना पड़ता है अतः ये दोनों कलाएं वाद्य-कला की तरह स्वतंत्र भी नहीं हैं ।

मनुष्य ने सब से पहले 'लय' की खोज की है जिस के साथ ही वाद्य-कला का जन्म हुआ । आज तक के सभी प्रकार के अन्वेषणों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि विश्व के सभी भागों में वाद्य-यंत्रों का प्रयोग मानव ने सब से पहले जाना । वाद्यों का प्रयोग प्रारम्भिक अवस्था में संगीत के लिये नहीं अपितु जादुई प्रभाव उत्पन्न करने के लिये, उत्साह बढ़ाने के लिये, संदेश पहुंचाने आदि के लिये किया गया था। प्राचीन संगीत की असौन्दर्यात्मक प्रकृति वाद्यों में विशेष रूप से परिलक्षित होती है । पुरातन कालीन वाद्यों की संख्या और प्रकार आश्चर्यजनक है । उस समय के मानव ने प्रकृति-प्रदत्त पर्याप्त सामग्री को नाद और लय-उत्पादक यन्त्रों के रूप में बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है । मानव ने नाद और लय उत्पन्न करने की अनेकों विधियों को युगों पहल ही खोज निकाला था । विभिन्न प्रकार की सामग्री से उसने वाद्य-यन्त्रों को दक्षतापूर्ण बनाना सीखा, बजाना सीखा किन्तु सदैव सौन्दर्य की उपेक्षा की । वाद्य अपने गुणों की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण थे किन्तु वे सुन्दर नहीं थे । उन की ध्वनियां कोमल, गरजदार और तीखी सभी प्रकार की थीं, उनकी आकृति गोल और नोकीली थी, रंग सफेद और लाल थे । उन में ध्वनियां चोट करने से, थपथपाने से, खरोचने से, नोचने से, रगड़ने से, हिलाने से और फूंक देने से उत्पन्न की जाती थीं ।

डरावने और जादुई प्रभाव उत्पन्न करने से लेकर संगीतात्मक आनन्द देने तक, हड्डियों की सीटियों से लेकर अनेकों छिद्रों वाली बांसुरी तक, घोर गर्जना करने वाली भूमि-दुन्दुभी से लेकर मृदंग जैसे पुष्कर-वाद्यों तक—वाद्य-यन्त्रों को युगों लम्बी दूरी

Scanned with CamScanner

तय करनी पड़ी है। इस तथ्य की सिद्धि में हिमाचल प्रदेश अपने लोक-वाद्यों के आधार पर अनेकों प्रमाण दे सकता है। वह इस प्रमाण की पुष्टि में भी आ खड़ा हो सकता है कि मानव ने सब से पहले लय अथवा ताल-वाद्यों को ही जन्म दिया था। इस प्रदेश के दर्जनों वाद्य, अन्वेषकों को सुदूर भूत में ले जाने की क्षमता रखते हैं। किन्तु इस के लिए उन्हें लोक-वाद्यों के समीप पहुंचना होगा क्योंकि इस प्रदेश में इस विषय में अभी उन्हें कोई भी सामग्री एक स्थान पर एकत्रित नहीं मिलेगी।

मैं यह लेख कुछ देखी और कुछ अनदेखी सामग्री के आधार पर प्रस्तुत कर रहा हूं। मेरा ध्येय हिमाचल प्रदेश के लोक-वाद्यों का यहां परिचय देना नहीं है, अपितु हिमाचल के लोक-वाद्यों के विषय में जानकारी देने वाले उन लेखकों को कुछ आधार देना है, जिन के पास बिखरी हुई सामग्री है, लिखने की छटपटाहट भी है और लगन भी। किन्तु उस सामग्री को ठीक ढंग से प्रस्तुत करने या संग्रहित करने की रूप-रेखा या चार्ट नहीं है, क्योंकि वे संगीत-शास्त्री नहीं हैं केवल मुझ जैसे कला प्रेमी ही हैं।

लोक-वाद्यों की पहचान

हिमाचल प्रदेश के लोक-वाद्यों के विषय में सामग्री एकत्रित करने से पूर्व यह जानना अति आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के वाद्यों में से लोक-वाद्यों को कैसे पहचाना जाये। वास्तव में यह एक विस्तृत विषय है जिसे मैं यहां संक्षेप से संकेतक के रूप में प्रस्तुत करूंगा। लोक-वाद्य कब शास्त्रीय-वाद्य बन जाता है तथा शास्त्रीय-वाद्य कब लोक-वाद्य में परिवर्तित हो जाता है यह भी एक अलग विषय है। 'ढोल', 'बांसुरी' और 'शहनाई' एक ओर लोक-वाद्य हैं तो दूसरी ओर शास्त्रीय-वाद्य भी।

हिमाचल प्रदेश में लय-वाद्यों की संख्या स्वर-वाद्यों की अपेक्षा काफ़ी अधिक है। जो स्वर-वाद्य इस प्रदेश में हैं भी उन में भी गीतानुगामिता बहुत कम में है। सभी प्रकार के वाद्यों में से लोक-वाद्य ढूंढ निकालने के लिये निम्नलिखित मोटी-मोटी बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

1. **सामग्री**—वाद्य-यंत्र जिस सामग्री से बना है वह सामग्री क्षेत्रीय अथवा स्थानीय रूप से प्राप्त होनी चाहिए—चाहे वह मिट्टी हो, लकड़ी या काठ हो या कोई धातु हो, खाल हो अथवा तांत। उस सामग्री के लिये कारीगर को बाहर से सामान न मंगाना पड़े। यदि मंगाना ही पड़े तो बहुत थोड़ा—जैसे 'इकतारा' के लिये तार।
2. **कारीगर**—वाद्य-यंत्र को बनाने वाला कारीगर स्थानीय या क्षेत्रीय होना चाहिये। कारीगर चाहे गांव के आम लोग हों या संगीत-पेशा वर्ग हो अथवा देव मन्दिरों-गुम्फाओं के व्यय पर पलने वाले कुछ व्यक्ति हों।
3. **बनावट अथवा आकार-प्रकार**—लोक-वाद्य आकार-प्रकार में प्रायः समान नहीं होते। सामग्री एक जैसी होती है किन्तु फिर भी उनकी बनावट एक जैसी नहीं होती। इस का कारण है—स्थानीय कारीगर का अपना हाथ और कला-कल्पना। उदाहरणार्थ आप हिमाचल की ढोलक ले लें तो वह सभी जगह परिमाण में भिन्न होगी
4. **कलात्मक रेखांकन**—वाद्यों पर जो कलात्मक रेखांकन होता है उस से भी लोक-कला के परिप्रेक्ष्य में, लोक-वाद्य का निर्णय किया जा सकता है। स्थानीय कारीगर द्वारा कलात्मक रेखांकन उसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी की देन होती है जिसे वह थोड़े-बहुत सुधार के साथ दोहरा देता है।
5. **धार्मिक अनुष्ठान**—कुछ वाद्य ऐसे होते हैं जो विशेष धार्मिक अनुष्ठानों पर ही बजाये जाते हैं। ऐसे अवसर पर प्रायः लोक-वाद्यों का प्रयोग परम्परागत निष्ठा के अधीन होता क्योंकि ये वाद्य अनुष्ठानों के सन्दर्भ में शुभ अथवा अशुभ के द्योतक होते हैं।

हिमाचल प्रदेश के लोक-वाद्य तीन मुख्य जन-वर्गों में अथवा स्थानों पर सुरक्षित हैं। कुछ वाद्य तो गोम्फाओं, भाटों और पंडितों, लामाओं आदि के अधीन देव-मन्दिर अथवा गोम्फाओं की सम्पत्ति के रूप में सुरक्षित हैं, यह पहला वर्ग है। इन वाद्यों का प्रयोग मन्दिरों और गोम्फाओं में विशेष धार्मिक अनुष्ठानों पर किया जाता है। देवतादि की आज्ञा से इन्हें लोग भी गमी-खुशी में उपयोग में ला सकते हैं। ऐसे वाद्यों में—'धौंसा', 'नगारा', 'दमामा', 'बड़ा ढोल', 'तुंगयुंग', 'रणसिंघा', 'करनाल' 'झांझ', 'थाली' आदि हैं। कुछ वाद्य ऐसे हैं जिन्हें हिमाचल के संगीत पेशा वर्ग के लोग—'बाजगी', 'तूरी', 'ढाकी' आदि—स्वयं बनाते हैं और उपयोग में लाते हैं। इन वाद्यों का प्रयोग वे साल भर में दो-तीन ही बार करते हैं। या यह दूसरा वर्ग उन्हें तब प्रयोग करता है जब किसी गांव से आमन्त्रण प्राप्त हुआ हो। ऐसे वाद्यों में—'ढोलक', 'हुड़क', 'गुजू', 'शहनाई' आदि हैं। तीसरा वर्ग है आम जनता, जिस के पास 'बांसुरी', 'लगोजू', 'ढोलकी', 'खंजरी', 'घड़ा' आदि लोक-वाद्य होते हैं। इन वाद्यों को गांव का लग-भग हर प्रौढ़ व्यक्ति बना लेता है या बनाने में किसी से सहायता ले लेता है। ये वाद्य गांव में लगभग सभी घरों में प्राप्त हो सकते हैं।

वाद्य और उपकरण

भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर कोहल आदि संगीताचार्यों ने संगीत के पांच उपकरण माने हैं—

> **एकं ईश्वरनिर्मितं नैसर्गिकम् अन्यच्चतुर्विधं मनुष्यनिर्मितं चेति पञ्चप्रकाराः महावाद्यानाम्।**
>
> —**नारदीय शिक्षा**

पंच महावाद्यों में कण्ठ ईश्वर निर्मित एवं नैसर्गिक अभ्यन्तर उपकरण है और शेष चार बाह्य उपकरण मनुष्य द्वारा निर्मित हैं। कण्ठ को छोड़ कर वाद्य-संगीत उपकरण

चार ही रह जाते हैं। वे हैं—वायु, तन्तु, धातु तथा चर्म। कण्ठ द्वारा जिस प्रकार संगीतोपयोगी ध्वनि निकलती है, उसी प्रकार ऊपरिलिखित उपकरणों द्वारा वाद्य-यंत्रों के माध्यम से मनुष्य संगीतोपयोगी ध्वनि निकाल सकता है। विभिन्न वाद्य-यन्त्रों पर विचार करने के लिये मुख्य तीन बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिये। 1. वाद्य-यंत्रों का मूल ढांचा। 2. कम्पित पदार्थ। 3. प्रेरक पदार्थ। यदि हम वाद्य-यंत्रों के मूल ढांचे के क्रमिक विकास के इतिहास पर सोचें तो लगेगा कि मनुष्य ने अपने विकास के साथ-साथ वाद्यों के मूल ढांचे में भी परिवर्तन किया। हजारों वर्ष पूर्व बांसुरी का निर्माण हड्डी, मिट्टी और बांस की स्थिति से होता हुआ क्रमशः लकड़ी, पीतल, लोहा, चांदी, सोना आदि तक पहुंच गया। लय-वाद्य पहले मिट्टी के बनते थे, फिर लकड़ी के और आज धातुओं के बनने लगे हैं। हर वाद्य का अपना एक खोल या ढांचा होता है जो उसे आकार-प्रकार, रूप और बनावट देता है। कई बार एक ही वाद्य मूल ढांचे की विभिन्नता से नये नाम धारण कर लेता है। इसी मूल ढांचे से वाद्य में स्थानीय रंग भी आता है।

कम्पित पदार्थ से अभिप्राय मूल ढांचे में लगे या प्रयोग किये गये उस पदार्थ से है जिसे छेड़ने, रगड़ने, थपथपाने आदि की क्रिया से उसमें ध्वनि-तरंगें प्रवाहित होती हैं अथवा उस पदार्थ से स्वर निकलते हैं। जैसे—ढोल में चमड़ा, इकतारे में तार, थाली में स्वयं थाली, बांसुरी में वायु। कुछ वाद्यों में कम्पित पदार्थ मूल ढांचे से अलग होता है। जैसे—ढोल में चमड़ा अलग से मढ़ा जाता है, सितार या इकतारे में तार अलग से बांधे जाते हैं। कुछ वाद्यों में मूल ढांचा ही स्वयं कम्पित पदार्थ होता है। जैसे—झांझ में स्वयं झांझ, थाली में स्वयं थाली। वाद्यों में जो भी कुछ परिवर्तन या विकास हुआ वह उस के मूल ढांचे में अधिक हुआ, कम्पित पदार्थ अथवा ध्वनिकारक पदार्थ में नहीं। हां कंपित पदार्थों की कोटि में अन्तर अवश्य आया है।

तीसरी बात है प्रेरक पदार्थ की। प्रेरक पदार्थ से अभिप्राय है उस पदार्थ या वस्तु से जिस के द्वारा कम्पित पदार्थ को छेड़ा जाये ताकि कम्पित पदार्थ से ध्वनि या नाद प्रवाहित हो। ढोल के लिये हाथ या डंडी, सितार के लिये मिजराब, बांसुरी के लिये होंठ और थाली के लिये डंडा प्रेरक पदार्थ हैं।

किसी भी वाद्य पर विचार करने से पूर्व ऊपरलिखित तीन बातों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। मूल ढांचा किस वस्तु से बना है, उसका रूप-आकार क्या है, उसका परिमाण कितना है अर्थात् लम्बाई-चौड़ाई-गहराई क्या है, उस के बनाने वाले कारीगर कौन हैं, वह किस जाति, वर्ग अथवा क्षेत्र का है, मूल ढांचे में प्रयोग होने वाली वस्तुओं की प्राप्ति कहां से होती है, आदि जान लेने से वाद्यों के तुलनात्मक अध्ययन में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। इसी प्रकार कम्पित पदार्थ के विषय में भी है। ऊपरलिखित तथ्यों के अतिरिक्त इस में यह ज्ञात होना भी आवश्यक है कि पदार्थ को मूल ढांचे पर कैसे चढ़ाया या बैठाया जाता है और उस की ध्वनियों में चढाव-उतराव पैदा करने के लिये ढांचे या कम्पित पदार्थ में क्या कुछ अतिरिक्त जोड़-तोड़ किया जाता है। अन्त में प्रेरक पदार्थ के विषय में ऊपरलिखित सभी जानकारी

के अतिरिक्त वादन-विधि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। यह जानना भी जरूरी है कि कौन सा वाद्य किस अवसर अथवा उत्सव पर बजाया जाता है। वादन-प्रक्रिया अथवा वादन-विधि में प्रेरक पदार्थ का ही सर्वोपरि स्थान है। निपुण वादक प्रेरक पदार्थों के विभिन्न और सफल उपयोगों द्वारा वाद्य-यंत्रों में विभिन्न गति, लय, स्वर और बोलों को जन्म देता है।

'संगीत मकरन्द' में संगीतात्मक ध्वनियों को पांच वर्गों में बांटा गया है—'**नखवायुज चर्माणि लौहशारीरजास्तथा**' इन पांच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को '**पंचमहावाद्यानि**' कहा गया। महर्षि भरत और दत्तिल ने इन वाद्यों के चार ही वर्ग माने हैं जो 'तत', 'आनद्ध', 'घन' और 'सुषिर' हैं। 'नारद' ने केवल तीन ही कहे हैं—'आनद्ध', 'तत', और 'घन'। विश्लेषण से विदित होता है कि जिन आचार्यों ने 'शरीरज' ध्वनि अथवा कण्ठ-ध्वनि को वाद्य-ध्वनि में नहीं लिया उन्होंने चार ही वर्ग किये हैं तथा जिन्होंने शरीरज अथवा ईश्वर निर्मित-ध्वनि को वाद्यों में सम्मिलित किया उन्होंने पांच वर्ग माने हैं। वैसे तो उपनिषदों और पुराणों में ध्वनियों के अनेक नाद मिलते हैं। हंसोपनिषद् में तो दस प्रकार के नादों का वर्णन है किन्तु ये सभी नाद महर्षि भरत के चतुर्विध वर्गीकरण में आ जाते हैं। इस वर्गीकरण को अनेक परवर्ती आचार्यों ने माना है। इस वर्गीकरण के लम्बे इतिहास में मध्ययुग तक दो साधारण परिवर्तन दिखाई दिये। इन में से पहला परिवर्तन है 'अवनद्ध' या 'आनद्ध' के स्थान पर 'वितत' शब्द का प्रयोग और दूसरा परिवर्तन है 'ततानद्ध' नाम का नया वर्ग स्थापित होना। पहला परिवर्तन अर्थात् 'अवनद्ध' के स्थान पर 'वितत' शब्द का प्रयोग 'तानसेन' और उस के बाद के कलाकारों में पर्याप्त प्रचलित रहा—

"तत को पहले कहत है वितत दूसरो जान,
तीजो घन चौथे सिखर तानसेन परमान।"

तानसेन से पूर्व रचित 'संगीत चूड़ामणि' ग्रंथ में और जायसी के 'पद्मावत' में भी यह प्रयोग मिलता है। दूसरा परिवर्तन नया वर्ग बनाने का है जो शायद 'इकतारा' जैसे वाद्य-यन्त्र को देख कर किया गया होगा जिसमें प्रयुक्त कम्पित पदार्थ दो हैं। पहला है 'अवनद्ध' वाद्य की तरह तूम्बे पर खाल का प्रयोग, दूसरा है तार या तांत का 'तत' वाद्य के समान उपयोग। ऐसे ही तत और अवनद्ध वाद्य-गुण-युक्त वाद्य-यन्त्र 'ततानद्ध' कहलाते रहे होंगे।

वाद्य-वर्गीकरण

भारत के आधुनिक संगीत-वाद्यों के प्रकार और संख्या पश्चिमी प्रभाव से दिन ब दिन बढ़ती जा रही है अतः हमारा यह प्राचीन चतुर्विध वर्गीकरण कुछ छोटा पड़ने लगा है जिसकी ओर आधुनिक संगीत शास्त्रियों का ध्यान बराबर लगा है। Francis W. Galpin, Dr. Curt Sachs, Nicholas Bessaraboff आदि योरोपीय संगीतज्ञों की नई खोज और नए वर्गीकरण के आधार पर भारतीय संगीत शास्त्रियों ने देश के वाद्य-यन्त्रों का नया वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है जिसका मूलाधार उन्होंने चतुर्विध

Scanned with CamScanner

वर्गीकरण ही रखा है। हिमाचल के लोक-वाद्यों को वर्गीकृत करने के लिये महर्षि भरत (C. 300 A. D.) द्वारा निर्धारित वर्गीकरण ही पर्याप्त होगा । इन चारों वर्गों में 'तत' और 'सुषिर' स्वर-वाद्य हैं तथा 'घन' और 'अवनद्ध' लय-वाद्य ।

१. तत-वाद्य—

स्वर वाद्यों में इस वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है । इस वर्ग ने अपने लम्बे इतिहास में विकास की अनेकों सीढ़ियां चढ़ी हैं । इस वर्ग के वाद्यों के ढांचे लकड़ी या तूम्बे के होते हैं । इन में से किसी किसी पर खाल भी मढ़ी होती है । इस वर्ग के वाद्यों में कम्पित पदार्थ अथवा ध्वनिकारक पदार्थ तार या तांत होती है। वादन-क्रिया के आधार पर इस वर्ग में निम्नलिखित चार उपवर्ग किये जा सकते हैं :—

1. **अंगुलियों से छेड़ कर या टंकार देकर बजाये जाने वाले तत वाद्य.**—इन वाद्यों के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश में केवल 'एकतारा' का ही नाम आता है। यदि 'किंदरी' वीणा नहीं है तो वह भी इसी उपवर्ग का लोक-वाद्य होगा ।

2. **कोण, तिकोण अथवा मिजराब के द्वारा तांतों या तारों को छेड़ कर बजाये जाने वाले वाद्य.**—इस उपवर्ग में हिमाचल के लाहुल-स्पिति क्षेत्र में बजाया जाने वाला एक लोक-वाद्य है जिसका नाम 'ग्राम्याङ्' है जो रब्बाब के समान बजाया जाता है ।

3. **गज से रगड़ कर बजाये जाने वाले तत-वाद्य.**—इन वाद्यों में ध्वनिकार पदार्थ अन्य तत-वाद्यों के ही समान होते हैं किन्तु ध्वनि प्रेरक के रूप में एक धनुषाकारीय गज होता है जिसमें डोरी के स्थान पर घोड़े की पूंछ के बाल बन्धे होते हैं । इस प्रदेश में इस उपवर्ग के अधीन 'सारंगी' और 'चिकारा' जैसे वाद्य आते हैं ।

4. **डण्डी से प्रहार कर के बजाये जाने वाले वाद्य.**—इस उपवर्ग में हिमाचल प्रदेश का कोई भी लोक-वाद्य नहीं प्राप्त होता । काश्मीर का 'सन्तूर' और शरणार्थी तिब्बतियों का वाद्य-यन्त्र 'जुमङ्' इस उपवर्ग में आते हैं ।

तत वाद्यों को गीतानुगामी अथवा संगति उपयोगी बनाने की दृष्टि से तीन उपवर्गों में बांटा जा सकता है —

1. **सुन्दरी या पर्दों (Frets) से युक्त तत-वाद्य.**—इस प्रकार का कोई भी लोक-वाद्य मैंने अभी तक इस प्रदेश में नहीं देखा । हां, शास्त्रीय वाद्यों में सितार और दिलरुबा जैसे वाद्य यहां के विद्यालयों में हैं । इस श्रेणी के वाद्यों में गीतानुगामिता के गुण होते हैं ।

2. **सुन्दरी रहित तत-वाद्य**—इस उपवर्ग में वे वाद्य आते हैं जिन में गीतानुगामिता की पूर्ण क्षमता है किन्तु ढांचे पर कोई पर्दा (Fret) नहीं बंधा होता । ऐसे वाद्यों में 'सारंगी' 'चिकारा' और 'ग्राम्यांङ्', 'जुमङ्' आदि वाद्यों का नाम आता है ।

3. **तांत या तार के स्थिर स्वर वाले वाद्य.**—इस उपवर्ग में इस प्रदेश का 'इकतारा' है । इस में तार को, खूंटी के घुमाने-फिराने से, कसा या ढीला किया जा सकता है, जिस से किसी भी गायक के 'आधार-स्वर' अथवा 'षडज्' के अनुसार वाद्य का स्वर

मिलाया जा सकता है। ऐसे वाद्यों में स्थिर स्वर के अतिरिक्त लय बजती रहती है । इस उपवर्ग के वाद्यों द्वारा गायन की पूर्ण संगति नहीं हो पाती । शास्त्रीय वाद्यों में 'तानपूरा' इसी उपवर्ग का वाद्य है ।

हिमाचल प्रदेश में तत वाद्यों का क्षेत्र मुख्यतः मैदानी है । मध्यवर्ती अथवा सीमान्त क्षेत्र में इस वर्ग के वाद्य बहुत कम हैं । लाहौल-स्पिति में 'ग्राम्याङ्' और 'जुमङ्' तथा शिमला जिला के ऊपरी क्षेत्र में 'किंदरी' का नाम आता है । किन्दरी वाद्य के विषय में बहुत सी सन्दिग्ध बातें हैं । कुछ लोग इसे साधुओं से जोड़ते हुए इकतारा का रूप बतलाते हैं । और कुछ लोग वीणा का । अभी तक यह वाद्य देखने में नहीं आया । यदि 'खिंदरी', 'किंदरी', 'किंगरी' अथवा 'किनरी' वास्तव में किन्नरी वीणा प्रमाणित हो जाती है तो इस वर्ग में हिमाचल प्रदेश का यह सब से प्राचीन वाद्य-यन्त्र होगा । यही नहीं, पर्दे वाला (with Fret) यह सब से पहला और सब से अन्तिम स्वर-वाद्य होगा ।

२. सुषिर वाद्य—

स्वर वाद्यों में दूसरा वर्ग है सुषिर वाद्यों का। इस वर्ग में मूल ढांचा बांस, लकड़ी और धातु आदि किसी भी पदार्थ का हो सकता है । इस वर्ग में कम्पित पदार्थ अथवा ध्वनिकारक पदार्थ वाद्य में स्थित वायु होती है जिसे ध्वनि प्रेरक मुख द्वारा निकाली गई संयत वायु के साथ मिला कर बाहर धकेला जाता है । अतः इन्हें 'फूंक वाले वाद्य' भी कहा जा सकता है। वादन-क्रिया के आधार पर इन वाद्यों को निम्नलिखित तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. वाद्ययन्त्र में फूंक मारने वाले सिरे पर बने बटनाकार स्थान पर दोनों होंठों को सटा कर, पर्याप्त शक्ति से फूंक मारने पर बजने वाले सुषिर वाद्य । ये अंग्रेजी में lip Voiced वाद्य कहलाते हैं । इन में कुछ 'सिंघा' टाइप होते हैं और कुछ 'तुरही' टाइप । सिंघा टाइप वाद्यों में 'रणसिंघा' प्रसिद्ध है और तुरही टाइप में 'करनाल' ।

2. वाद्ययन्त्र के छेद पर निचला होंठ रख कर हल्की सी केन्द्रित फूंक मार कर बजाये जाने वाले और वाद्ययन्त्र को दोनों होंठों के बीच रख कर बजाये जाने वाले सुषिर वाद्य । इन्हें अंग्रेजी में Flue Voiced कहते हैं । इस में पहले टाइप के अन्तर्गत आने वाले वाद्य यहां 'बांसुरी' या 'बिशड़ी' है और दूसरे टाइप में आने वाला वाद्य 'लगोजू' अथवा अलगोजा है ।

3. इस उपवर्ग में वे सुषिर वाद्य आते हैं जिनमें बजाने वाले सिरे पर 'पत्ते' का का प्रयोग किया जाता है । फूंक पत्ते के माध्यम से ही वाद्ययन्त्र में पहुंचती है । ऐसे वाद्यों को अंग्रेजी में 'Reed voiced' कहा गया है । इन में से कुछ वाद्य इकहरे पत्ते वाले होते हैं जैसे 'बीन' और कुछ दोहरे पत्ते वाले होते हैं—जैसे शहनाई ।

सुषिर वाद्यों को गीतानुगामिता अथवा संगति उपयोगिता की दृष्टि से निम्नलिखित दो उपवर्गों में बांटा गया है :—

1. ऐसे वाद्ययन्त्र, जिन में स्वर विभिन्नता अथवा स्वरों में उतार-चढ़ाव उत्पन्न करने के लिये कुछ छिद्र किये गये हों। ऐसे वाद्यों में बांसुरी और शहनाई का नाम आता है।

हिमाचल प्रदेश में वादकों की अकुशलता के कारण इन वाद्यों के गुणों का पूरा लाभ नहीं उठाया जाता ।

2. ऐसे सुषिरवाद्य जिन में स्वर विभिन्नता के लिए कोई छिद्र नहीं होता किन्तु कुशल वादक फूंक के संयम से तीन चार स्वर आसानी से निकाल सकता है । इस उपवर्ग में शंख, सिंघा और तुरही टाइप के स्वर-वाद्य आते हैं ।

३. घन-वाद्य—

यह वर्ग ताल और लय-वाद्यों का है। इस वर्ग में ऐसे वाद्यों का प्रवेश होगा जिन का मूल ढांचा लकड़ी, धातु अथवा लकड़ी-धातु दोनों का बना हो, तथा जिन्हें ताल या लय के लिये आपस में टकरा कर या किसी वस्तु से पीट कर अथवा हिला कर बजाया जाये। इन वाद्यों में कम्पित पदार्थ स्वयं उस वाद्य का ढांचा ही होता है। बनावट की दृष्टि से भारत में घन-वाद्यों के अनेकों वर्ग हो सकते हैं। हिमाचल में भी कुछ वर्ग बनाये जा सकते हैं किन्तु अभी यहां इस लिये इस की आवश्यकता नहीं कि हमें घन वाद्यों का पूरा ब्योरा प्राप्त नहीं। वादन क्रिया के आधार पर इन के निम्न-लिखित चार उपवर्ग किये जा सकते हैं :—

1. इस उपवर्ग में वे घन-वाद्य आयेंगे जिन के आपस में टकराने वाले हिस्से आकार-प्रकार में एक जैसे ही हों। इन्हीं दोनों भागों को आपस में टकरा कर अथवा हिला कर बजाया जाता है। इस प्रदेश में इस उपवर्ग के अन्तर्गत आने वाले वाद्य हैं—झांझ, मंजीरा, खड़ताल, चिमटा आदि।
2. किसी डण्डी अथवा शंकु के आघात से बजाये जाने वाले घन-वाद्य। इस उपवर्ग के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश में घण्टा, घड़ियाल, थाली, भाणा आदि धातु-निर्मित वाद्य और 'कोकाठा' जैसे खोखली लकड़ी से बने वाद्य आते हैं।
3. हाथ से हिला कर बजाये जाने वाले वाद्य। ये वाद्य धातु में या किसी अन्य वस्तु मे पोलापन रख कर उस में कुछ कंकर भर कर बनाये जाते हैं। जब इन्हें हिलाया जाता है तो ये ध्वनि देते हैं। इस उपवर्ग में यहां 'झुन झुना' और 'घुंघरू' जैसे वाद्य आते हैं।
4. हाथ से नोच कर या टंकार देकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस उपवर्ग में यहां शायद एक ही वाद्य 'मुरचंग' है।

घन वाद्यों में लय अथवा ताल के कारण गीतानुगामिता और नृत्यानुगामिता तो है ही किन्तु 'बोल-परण' निकाले जाने की क्षमता के दृष्टिकोण से इन वाद्यों के निम्न-लिखित तीन उपवर्ग हो सकते हैं :—

1. **साधारण बोल-परण क्षमता युक्त**—जिन वाद्यों से बोल-परणें उन्हें पीट कर अथवा टकरा कर निकाली जा सकती हैं। इस उपवर्ग में केवल अभी तक 'कोकाठा' वाद्य ही आता है जिसे दोनों हाथों से डण्डियों द्वारा बजाकर विभिन्न बोल-परणें निकाली जाती हैं।

2. **सीमिति बोल-परण क्षमता युक्त**—इस उपवर्ग में हम यहां का वाद्य 'मंजीरा' लेते हैं क्यों कि इस पर हर ताल में कुछ सीमित बोल निकाले जा सकते हैं।

3. **बोल-परण क्षमता हीन**—जिन घन-वाद्यों में एक या दो प्रकार की निश्चित लय ही बजाई जाती हैं। इस उपवर्ग में 'झांझ', 'थाली' आदि वाद्य आते हैं।

४. अवनद्ध वाद्य—

लय अथवा ताल वाद्यों में यह दूसरा और महत्वपूर्ण वर्ग है। इस वर्ग का इतिहास भी तत-वाद्यों के समान ही पुराना है। इस वर्ग के वाद्यों में कम्पित पदार्थ अथवा ध्वनिकारक पदार्थ तनी-मढ़ी खाल होती है। इन वाद्यों का मूल ढांचा मिट्टी से, लकड़ी से या धातु से बनाया जाता है जो कि एक छोर अथवा दोनों छोरों से खोखला होता है। मूल ढांचे की बाहरी दीवार आधा इंच से अधिक मोटी नहीं होती। वादन-प्रक्रिया के आधार पर इस वर्ग को निम्नलिखित सात उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. **दोनों हाथों से बजाए जाने वाले वाद्य**—इस उपवर्ग के अन्तर्गत हिमाचल में 'ढोलक', 'ढोलकी', 'घड़ा' आदि वाद्य हैं। इन के छोटे मुख वाला भाग दायें हाथ से और बड़ा मुख वाला हिस्सा बायें हाथ से बजाया जाता है। वैसे तबला भी दोनों ही हाथों से बजता है किन्तु वह यहां लोक-वाद्य नहीं है।
2. **एक हाथ से केवल अंगुलियों से बजाये जाने वाले वाद्य**—इस उपवर्ग में यहां 'खंजरी' 'हुड़क' आदि वाद्य हैं।
3. **दोनों हाथों से डण्डों द्वारा बजाये जाने वाले वाद्य**—इस उपवर्ग में 'ढोल' 'नगारा', दमामा', 'धौंसा' आदि वाद्य आते हैं।
4. **एक ओर हाथ से और दूसरी ओर डण्डी से बजाए जाने वाले वाद्य**—हिमाचल में 'बड़ा ढोल', 'बाम' आदि इस उपवर्ग के वाद्य हैं।
5. **लकड़ी की घुंडी या शंकु के आघात से एक ही हाथ द्वारा बजाये जाने वाले वाद्य**—इस उपवर्ग में 'डौरू', 'तुड्युड्' आते हैं।
6. **वाद्य में बंधी घुंडियों की चोट से बजने वाला वाद्य**—इस उपवर्ग में मदा-रियों द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य 'डमरू' है।
7. **दाएं हाथ से शंकु की चोट द्वारा और बांएं हाथ से मध्यमा अंगुली की रगड़ द्वारा बजने वाले वाद्य**—इस उपवर्ग में 'गुजू', 'ढाकली', 'पवन' आदि वाद्य आते हैं।

Scanned with CamScanner

आकार तथा बनावट की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों को निम्नलिखित पांच उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

1. **डमरू आकारीय**—इस प्रकार के वाद्य दोनों ओर से खाल मढ़े और आकार में Hour Glass Type, बीच से मुखों की अपेक्षा तंग होते हैं। इस उपवर्ग के वाद्यों में, 'हुड़क', 'डौरू', डमरू', 'गुजू', 'पवन', 'डाकरू' आदि वाद्य आते हैं।

2. **खंजरी आकारीय**—इस प्रकार के वाद्य एक ओर खाल से मढ़े होते हैं और दूसरी ओर से खाली। 'खंजरी', 'डफ' आदि इस उपवर्ग में आते हैं। हिमाचल के 'तुङ्युङ्' वाद्य को भी हम इसी बनावट में ले सकते हैं। अन्तर केवल इतना है कि खंजरी की तरह इस के ढांचे की दीवार मुख की अपेक्षा कम चौड़ी तो होती है किन्तु यह दोनों ओर चमड़े से मढ़ा हुआ होता है।

3. **घट आकारीय**—इस प्रकार के वाद्यों में केवल 'घड़ा' ही ऐसा वाद्य है किन्तु इसका मुख चमड़े से मढ़ा नहीं होता अतः इस का कम्पित पदार्थ वायु है। इसे घन-वाद्यों में रखा जाय या अवनद्ध में यह बहस का विषय है जिसे यहां लेना इच्छित नहीं।

4. **नगारा आकारीय**—इस उपवर्ग में एकतालीय (एक हिस्सा) तथा दो-तालीय (दो हिस्से) दोनों प्रकार के वाद्य हैं। इस प्रदेश में 'नगारा', 'दमकीड़ी,' 'दमामटू', 'धौंसा', 'दमामा' आदि वाद्य इस उपवर्ग में आते हैं।

5. **ढोल आकारीय**—इस उपवर्ग में 'ढोलक', 'ढोलकी', 'ढोल', 'बड़ा ढोल', 'दाम' आदि वाद्य आते हैं। इन में भी आगे भिन्न भिन्न आकार हैं। कुछ ढोल एक मुख से दूसरे मुख तक समान घेरे के हैं, कुछ का मध्य भाग का घेरा बड़ा है, किसी का एक मुख छोटा एक बड़ा है तो किसी ढोल की लम्बाई चौड़ाई बराबर हैं आदि—किन्तु इस उपवर्ग के वाद्यों में डमरू-आकारीय वाद्यों के समान दोनों मुखों पर खाल मढ़ी होती है।

बोल-परण की क्षमता के आधार पर अवनद्ध वाद्यों को हम निम्नलिखित चार उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

1. **अपार बोल-परण क्षमता युक्त**—इस उपवर्ग में वे वाद्य आते हैं जिनमें अनेकों प्रकार के बोल निकाले जा सकते हैं। प्रायः ये वे वाद्य हैं जिन में दोनों हाथों का प्रयोग होता है। ऐसे वाद्य 'ढोल', 'नगारा', 'ढोलक' हैं।
2. **साधारण बोल-परण क्षमता युक्त**—इस उपवर्ग में वाद्यों को प्रायः एक ही हाथ से बजाया जाता है, इस में 'तुङ्युङ्' को छोड़ कर सभी खंजरी-आकारीय वाद्यों को लिया जा सकता है।

3. **सीमित बोल-परण क्षमता युक्त**—इस उपवर्ग में डमरू-आकारीय सभी वाद्य आ जाते हैं। इन वाद्यों पर बोल-परण निकालना असम्भव नहीं, कठिन अवश्य है।
4. **बोल-परण क्षमता हीन**—इस उपवर्ग में किसी हद तक 'धौंसा' (बहुत बड़ा नगारा) वाद्य आता है। इसे खड़े हो कर दोनों हाथों से डण्डों द्वारा पीट कर ढोल की ताल पर बजाया जाता है। 'तुङ्युङ्' भी इसी उपवर्ग के वाद्यों में आयेगा।

संगीत-वाद्यों के ऊपरलिखित वर्गीकरण के अतिरिक्त, जिस का आधार पर मैंने महर्षि भरत को ही रखा है—

ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च। चतुर्विध तु विज्ञेमातोद्यं लक्षणान्वितम् ॥
ततं तन्त्रीकृतं जेयमवनद्धं तु पौष्करम्। घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते ॥

आचार्य शारंग देव (ई० 1210–1247) का वर्गीकरण भी है, जिन्होंने महर्षि भरत को मानते हुये एक नया वर्गीकरण किया है। उन्होंने यह वर्गीकरण वाद्यों की उपयोगिता की दृष्टि से किया है जिस के आधार पर वाद्यों के चार प्रकार हैं—1. शुष्क, 2. गीतानु, 3. नृत्यानु, 4. नृत्यगीतानु

हिमाचल प्रदेश में सभी वाद्यों का प्रयोग इन चारों रूपों में किया जाता है। वृंद-वाद्य के रूप में सभी संगीत-वाद्य शुष्क श्रेणी में आ जायेंगे और गीत और नृत्य के समय इन की अनुगामिता और उपयोगिता इन्हें गीतानु, नृत्यानु और नृत्यगीतानु की श्रेणियों में ला खड़ा करेगी। फिर भी इस वर्गीकरण पर गहनता से विचार करने पर निश्चित वाद्यों को निश्चित श्रेणी में रखा जा सकता है।

अभी तक हिमाचल प्रदेश में लोक वाद्यों पर कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं। अतः यहां के वाद्यों की पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त करने के लिये यहां के संगीतज्ञों को, स्कूलों में कार्य कर रहे संगीत-अध्यापकों को, हिमाचल में रहने वाले संगीताचार्यों को और विद्यालयों में काम करने वाले संगीत-शिक्षकों को चाहिए कि वे इस ओर ध्यान दें और यहां के संगीत के प्रारम्भिक क्षेत्रों में शोधकार्य करें या सामग्री जुटा कर उसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराएं। अभी तक तो प्रदेश में यहां के समस्त संगीत-वाद्यों के नामों की सूची भी नहीं है जिसके आधार पर आगे खोज की जा सके। अतः यह कार्य-कला मर्मज्ञों को "श्री गणेशाय नमः" से ही प्रारम्भ करना होगा। इस समय जो कुछ भी इस क्षेत्र में किया जायेगा वह थोड़ा नहीं होगा। न जाने यहां के वाद्य-संगीत की मूल-भूत सामग्री—यहां के अनूठे वाद्य यंत्र जो धीरे-धीरे मन्दिरों और कोठड़ियों के अंधेरे में सड़ रहे होंगे, जिन्हें शायद अब कोई बजाने वाला भी न मिले—कब समाप्त हो जाये, और इस तरह संगीत के इतिहास के सबल प्रमाण कब गल-सड़ जायें।

* * *

—सम्पादक, 'हिमप्रस्थ'
हिमाचल प्रदेश लोक सम्पर्क विभाग शिमला।

हिमाचली-ललित-कलाओं के पारखी

—डा० नीलमणि उपाध्याय

'स्वप्नवासवदत्तम्' के यशस्वी नाटककार भास ने जीवन का महान तथ्य उद्घाटित करते हुए लिखा है 'कर्तारःसुलभाः लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः' अर्थात् संसार में कलाकार तो बहुत मिल जाते हैं परन्तु उनको जानने वाले कम ही होते हैं। एक प्रकार से यह उक्ति अत्यन्त विरोधी प्रतीत होती हैं। सामान्य विश्वास तो यही है कि साहित्य सृजन एक कृच्छ-साधना है तथा जीवन के हलाहल को पीकर कलाकार व साहित्यकार कला व साहित्य रूपी अमृत रसिकों को प्रदान करते हैं। ईशोपनिषद् के मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने तो उसे 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' कहकर सम्मानित किया है।

कला-पारखी का महत्व

साहित्य-स्रष्टा तो दूसरा प्रजापति है। वह नव-जीवन का सन्देश-वाहक है। साहित्य व कला से जीवन परिष्कार व परिमार्जन को प्राप्त होता है। साहित्यकार व कलाकार के लिए न केवल भावुक होना बल्कि अपने माध्यम व शैली पर पूर्ण अधिकार पाना भी आवश्यक है। दूसरों तक अपनी भावनाओं और विचारों का प्रभावशाली सम्प्रेषण अपने आप में एक विरल उपलब्धि है। पर लगता है कि अच्छी कला व साहित्य की परख भी कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए भी वैसी ही भावुकता पैनी दृष्टि तथा परख की आवश्यकता होती है। राजशेखर अपनी काव्य-मीमांसा में समीक्षक को स्रष्टा से भी अधिक महत्व देते हुए कहते हैं :—

करोति काव्य प्रायेण संस्कृतात्मा यथातथा
पठितुर्वेत्ति स परंयस्य सिद्धा सरस्वती ।

अर्थात् कोई सुसंस्कृत भावुक व्यक्ति जैसे तैसे काव्य की रचना करता है परन्तु उसकी परख वही करता है जिसकी सरस्वती सिद्ध हो। यह परमसिद्धि अत्यन्त दुर्लभ है तथा कठिनाई से ही प्राप्त होती है। हिमाचल के ललित-कलाओं के पारखी तथा उनकी देन को हमें इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। यहां के कलाकार हमारे पूज्य व वन्दनीय हैं तो यहां की ललित कलाओं के पारखी भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं तथा कृतज्ञता के भाव से हम उनका शत-शत नमन करते हैं।

हिमालय तथा हिमाचल प्रदेश

हिमालय पर्वत व उसके कैलाश पर जैसा हमारे लोकगीतों में कहा भी गया है 'शिवारा वासा' अर्थात् शिव का निवास है। संसार की सर्वोच्च पर्वत-शिखरमाला माउंट एवरेस्ट (8848 मीटर), कंचनजंघा (8578 मीटर), नांगा पर्वत (8114

मीटर), नन्दा देवी (7817 मीटर) आदि यहीं पर हैं। हिमालय पर्वत की लाहोल-स्पीति तथा शिवालिक श्रृंखलाएं वर्तमान हिमाचल प्रदेश का भूभाग हैं। बड़े बडे मठ विहारों, मंदिरों तथा ललित कलाओं के विकास की क्रीड़ास्थली यही रही है। कहना चाहिये कि हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में यही भूभाग धर्म व कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा है तथा भारत व एशिया के कई धर्मों व ललितकलाओं के महत्वपूर्ण आन्दोलनों का जन्म यहीं हुआ है।

वैदिक काल से आज तक हिमालय हमारे ऋषि-मुनियों की साधना तपस्या की एकांत स्थली रही है। महान विचारों का उद्भव तथा प्रसार यहीं से समस्त देश में हुआ है। ऊंचे पर्वत-श्रृंग, उच्छल आवेग-पूरित गंगा-सिन्धु-ब्रह्मपुत्र आदि नदियां, सदाबहार दुर्लभ वनराजि तथा उसमें आश्रय प्राप्त करने वाले दुर्लभ पशुपक्षी, पौधे सभी यहां की अमूल्य सम्पदा हैं। हिमालय का हिमाचल प्रदेश भूभाग भी अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के कारण न केवल ऋषि-मुनि, योगी-तपस्वी को ही आकृष्ट-आमन्त्रित करता रहा है बल्कि महान् साहित्यकारों, कलाकारों ने भी यहां आकर अपने साहित्य व कला को ऊंचाइयों व महानता तक पहुंचाया है।

यह प्रदेश दुर्गम उपत्यकाओं-अधित्यकाओं से घिरा हुआ है। फिर भी यात्रा की कठिनाइयों तथा जीवन की परवाह न करते हुए महान कला-समीक्षक यहां आते रहे हैं तथा इसकी सांस्कृतिक सम्पदा का आकलन उन्होंने किया है। यहां के मठों, विहारों व मंदिरों को उन्होंने देखा-परखा है तथा इसके आगे श्रद्धा से नतमस्तक होकर अपनी भावना व विचार व्यक्त किये हैं। उन्हीं साहसी व कला-पारखी सहृदयों की देन का यत्किंचित-दिग्दर्शन इस लेख का प्रतिपाद्य विषय है।

निकालस रोरिक

हिमाचल विशेषतः कुल्लू घाटी को दूर-दूर तक ख्याति दिलाने वाले हैं निकोलस रोरिक (1874–1947)। कुल्लू घाटी में नगर स्थान पर इन्होंने अपना निवास स्थान बनाया तथा अपने जीवन के अंतिम अठारह-उन्नीस वर्ष यहीं बिताए। इन्होंने भी महाकवि कालीदास की तरह 'देवतात्मा हिमालय' की उपासना-आराधना की। 'कुमार-सम्भव' में महाकवि कालिदास हिमालय की वन्दना व प्रशंसा करते हुए कहते हैं :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य, स्थितः पृथिव्याः इव मानदण्ड[1]: ।।

अर्थात् उत्तर दिशा में देवतास्वरूप हिमालय नामक पर्वतों का राजा, पूर्व और पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदण्ड की तरह विद्यमान है। कहना न होगा

1. कुमारसम्भव, प्रथम सर्ग, प्रथम श्लोक।

Scanned with CamScanner

कि आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व महाकवि कालिदास की इस भविष्योक्ति को महान कलाकार रोरिक ने सत्य सिद्ध कर दिखाया और समस्त कला-जगत ने अनुभव किया कि हिमालय वस्तुतः पृथ्वी का मानदण्ड ही है।

निकोलस रोरिक की आत्मा को हिमालय के इस भूभाग में आकर अपनी आध्यात्मिक व कला-साधना की पुण्यस्थली प्राप्त हुई। रूस के जंगलों व हरियाली में उनका जन्म व पालन-पोषण हुआ; इस प्रकार प्रकृति के प्रति वे उन्मुख हुए परन्तु कुल्लू घाटी के सौन्दर्य ने तो उन्हें अपने अनुपम सौन्दर्य व पवित्र वातावरण से ऐसा अभिभूत किया कि वे यहीं के होकर रह गये। उनकी कला व आध्यात्मिक साधना ने अपना साध्य यहीं प्राप्त किया। किसी स्वप्न से प्रेरित होकर वे कुल्लू घाटी में आए और यहां उन्हें प्रकृति द्वारा वह आश्रय प्राप्त हुआ जो किसी अबोध शिशु को अपनी मां की गोद में प्राप्त होता है। जो बात कभी महाकवि कालिदास ने गीर्वाणी में कही थी, उसे ही रंगों-रेखाओं तथा छाया-प्रकाश के माध्यम से इस युग-पुरुष ने व्यक्त किया।

निकोलस रोरिक आधुनिक काल में हिमाचल की ललित कलाओं के सबसे बड़े अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त पारखी थे। उन्होंने अपनी चित्रकला द्वारा हिमालय की गरिमा व सौन्दर्य को अभिव्यक्ति ही नहीं दी बल्कि 'हिमालय अनुसन्धान संस्थान' की स्थापना भी की। यहां की जन-जातियों, भाषा, वनस्पतिविज्ञान, पुरातत्व आदि के अध्ययन की समुचित व्यवस्था भी की। 1930—39 तक बड़े उत्साह से यहां की सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन आकलन किया गया। द्वितीय विश्व महायुद्ध के कारण इसमें कुछ बाधा उत्पन्न हुई।

निकोलस रोरिक महान पुरातत्ववेत्ता थे। भारत में कुल्लू घाटी तथा पांडीचेरी में उन्होंने भारत की संस्कृति के अनुसन्धान हेतु खुदाई इत्यादि का भी कार्य किया। इन्होंने अपनी एक पत्रिका भी प्रकाशित की जो इस सब अनुसन्धान से विश्व को अवगत कराती है। रोरिक जितने महान चित्रकार तथा पुरातत्वेता थे उतने ही वे सफल लेखक भी थे। कुल्लू में रहते हुए उन्होंने 'हिमालय-ज्योति-स्थान[1]' तथा 'हिमवत[2]' की रचना की। अपने प्रदेश के सौन्दर्य को हम देखा अनदेखा कर देते हैं परन्तु रोरिक ने उसी सौन्दर्य को उसकी अनुपमता व दिव्यता के साथ चित्रों व पुस्तकों के माध्यम से प्रस्तुत किया। कला तो संस्कार की बात है, जब तक हमें कोई अपने ही परिवेश के सौन्दर्य के प्रति उद्बोधन व प्रेरणा नहीं देता है, हम अपनी अज्ञानतावश व संस्कार-शून्यता के कारण वह सब देख व अनुभव नहीं कर पाते।

हिमालय भारत का मुकुट है, उसकी दिव्य मेधा का स्थान है। ऋषि-मुनियों की तपोभूमि है। एक बार फिर इस आधुनिक हिमालय के महर्षि ने शान्ति और सौन्दर्य का सन्देश समस्त विश्व को पहुंचाया। 1954 में उन्होंने रोरिक सन्धि तथा झण्डे (बैनर) की स्थापना की। इस सन्धि के अनुसार युद्धकाल में शान्तिध्वज लहराते

1. Himalayas—The Abode of Light (1947)
2. Himavat, (1947)

हुए कला-केन्द्रों को विध्वंस से मुक्त रखने का प्रयास किया गया। ललित कलाओं के संरक्षण के लिए रोरिक इतने जागरूक व प्रयत्नशील रहे, यह सब इस घटना से ही विदित हो जाता है।

हिमाचल के प्रति इसी अगाध प्रेम तथा सेवा-भावना के कारण निकोलस रोरिक को इस बात के परिचायक सम्बोधनों से विभूषित किया जाने लगा। कोई उन्हें हिमालय का 'महीरुह' कहता तो कोई 'हिमालय का ऋषि' अथवा 'हिमालय का महर्षि' संबोधित करता तो अन्य कोई 'हिमालय का भक्त' अथवा 'हिमालय का मनीषी' पुकारता। उनकी लम्बी दाढ़ी, स्वप्निल, सुन्दर आंखें, विचारों में निमग्न चेहरा—उनकी प्रतिभा से सहज ही हिमालय के ऋषि-मुनियों का ऐक चित्र हमारे सामने उभर आता है। इस देव भूमि, इस 'तपोभूमि' 'देवात्मा हिमालय' में ऐसी शक्ति, ऐसा चमत्कार है और इसका आभास निकोलस रोरिक की हिमालय के प्रति अलौकिक तथा एकनिष्ठ साधना से हो जाता है।

हिमालय के गुणों के पारखी तथा इसकी कला व सांस्कृतिक सम्पदा के अनन्य भक्त के सम्बन्ध में जवाहर लाल नेहरू ने कहा था—"जब आप उनके चित्रों का अवलोकन करते हैं और उनके अधिकांश चित्र हिमालय से सम्बन्धित हैं तब आप इन महान पर्वत मालाओं की आत्मा का अनुभव कर सकते हैं। भारत के मैदानों के ऊपर स्थित यह हिमालय शताब्दियों तक हमारा प्रहरी रहा है। हिमालय हमें न केवल हमारे पुरातन इतिहास, विचारधारा, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा का ही स्मरण कराता है बल्कि यह हमें भारत में जो स्थायी तथा शाश्वत है, उसका भी आभास देता है। अतः हम निकोलस रोरिक के प्रति कृतज्ञता के भाव के बिना नहीं रह पाते क्योंकि इन्होंने अपने अनेक केनवास पर हिमालय की इसी शक्ति व आत्मा का चित्रांकन किया है।[1]"

विश्व में शायद ही कोई कलादीर्घा (आर्टगेलरी) हो जहां रोरिक के हिमालय से सम्बन्धित चित्र प्रदर्शित न हों। इस प्रकार हिमालय के इस महामानव ने हिमालय—विशेषतः कुल्लू घाटी के अनुपम व अमर सौन्दर्य का सन्देश दूर सुदूर विदेशों तक भी पहुंचाया। उन्हीं के शब्दों में कहें,—"हिमालय के हिमशृंगों पर जो सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक परितोष है वह अन्य कहां....मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मैं विश्व भर में भारत की इस उज्जवल मणि–हिमालय की गरिमा का सन्देश पहुंचा पाया हूं।[2]"

काष्ठ-शिल्प

पर्वतीय इलाकों में इमारती तथा अन्य उत्तम लकड़ी सुलभ होने के कारण काष्ठ-शिल्प का स्वभावतः विकास हुआ। सम्भवतः काष्ठशिल्प के बाहुल्य के कारण काठमाण्डु का नाम काष्ठ अर्थात् काठ माण्डू पड़ा हो। काष्ठशिल्प की सब से बड़ी सीमा यह है कि वह बहुत देर तक टिक नहीं पाता। स्थायित्व के इस अभाव के कारण ही हिमाचल

1. Nicholas Roerich by his Contemporaries, page 2.
2. Nicholas Roerich by his Contemporaries, Page 6-7.

Scanned with CamScanner

प्रदेश में भी पुराने काष्ठशिल्प के स्मारक कम ही मिलते हैं । यहां स्मरण रहे कि काष्ठशिल्प के ललित पक्ष को लेकर ही विवेचना की गई है, उनके उपयोगी व हस्तकला पक्ष को लेकर नहीं ।

हर्मन गोट्ज़ ने, 'चम्बा के आरम्भिक काष्ठ मन्दिर[1]' की विवेचना द्वारा हिमाचल में विकसित काष्ठशिल्प का दिग्दर्शन कराया है । उन्होंने अपने व्यापक अनुभव, यात्रा व अनुशीलन द्वारा सिद्ध कर दिया है कि भरमौर का लक्षणा देवी, छत्री का शक्ति देवी तथा चम्बा लाहौल का मरकुला देवी का मन्दिर काष्ठशिल्प की दृष्टि से अद्वितीय कलाकृतियां हैं । गुर्जर-संस्कृति से गुप्त कला तथा प्रतिहार-परमार-पालवंशीय शिल्प का प्रभाव इस प्रकार इन पर्वतीय प्रदेशों में आया है, इस सब का विद्वत्तापूर्ण उद्‌घाटन कलामर्मज्ञ गोट्ज़ ने किया है ।

एक बात जो सामने आती है वह यह कि हमारे पर्वतीय प्रदेशों में शैव-शाक्त सम्प्रदाय अधिक सक्रिय रहे हैं । तन्त्र की भी यह साधना-स्थली रही है । बौद्ध-धर्म का भी यहां काफी प्रभाव रहा है । लाहौल-स्पिति के बौद्ध-मठ इसके उज्जवल प्रमाण हैं । कुल्लू का हिडिम्बा मन्दिर तथा पैगोडा शैली में बने काष्ठ-मन्दिरों में विकसित काष्ठ-शिल्प देखा जा सकता है । यही नहीं बल्कि यहां की स्थानीय व आदिम कला के कहीं दर्शन होते हैं तो इसी ललित कला में । यहां का काष्ठ शिल्प मन्दिरों, राजप्रासादों तथा अन्य भवनों में यहां की प्रकृति एवं पशु-पक्षियों के प्रतीकों व साज-सजावट के रूप में देखा जा सकता है ।

यहां के काष्ठ-शिल्प के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह कला विशुद्ध हिमाचली है तथा यहां की संस्कृति, धार्मिक विश्वासों तथा प्रकृति व जन-जीवन का इस पर विशेष प्रभाव है । हर्मन गोट्ज़ की तरह यदि व्यवस्थित ढंग से काष्ठशिल्प मन्दिरों व अन्य ऐसे भवनों का अध्ययन किया जाए तो वह हमारी संस्कृति व कला की कई अज्ञात विशेषताओं को प्रकाश में लाएगा ।

शिल्प (मूर्ति निर्माण कला)

जब अभी साल दो साल पहले चम्बा से लक्ष्मी नारायण की भव्य मूर्ति की चोरी हुई और कुछ कला-प्रेमियों ने इस सम्बन्ध में शोर मचाया तो लोगों का ध्यान हिमाचल प्रदेश की मूर्ति-निर्माण कला की ओर गया । केवल इस मूर्ति का ही मूल्य पन्द्रह लाख से तीन करोड़ तक आंका गया था । फिर भी अधिकांश जनता अज्ञानता से मोहान्ध इस ओर उपेक्षा का भाव बनाए रही । कला के लिए जो आत्म-परिष्कार तथा कठोर आत्मानु-शासन चहिए आज के मशीनी युग में उसका सर्वथा अभाव है जितना मूढ़त्व (वैल्गैरिटी) आज के शिक्षित समाज में है सम्भवतः वह प्राचीन अशिक्षित तथा कथित असभ्य समाज में नहीं था ।

हिमाचल की शिल्प कला के सम्बन्ध में मुख्य नाम मदनजीतसिंह का लिया जा सकता है । "हिमालय की कला"[2] की पुस्तक यूनेस्को की कला सम्बन्धी पुस्तकों के योजना-

1. Goetz, Hermann-The Early wooden Temples of Chamba (1955)
2. Singh, Manjit-Himalayan Art, 1968.

न्तर्गत प्रकाशित हुई है । इसी बात से इस पुस्तक का महत्व स्पष्ट है । इस ग्रन्थ में विद्वान लेखक ने लद्दाख, लाहौल-स्पिति, शिवालिक श्रृंखला, नेपाल, सिक्किम तथा भूटान की शिल्पकला व भित्ति चित्रों का विशेष विवेचन प्रस्तुत किया है । हिमाचल विशेषतः मण्डी की शिल्पकला के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व आदरभाव को व्यक्त करते हुए इस कला समीक्षक ने मण्डी के पंचवक्त्र मन्दिर के पंचानन शिव का पंचमुखी मुख मुख्य पृष्ठ पर दिया हुआ है ।

सम्पूर्ण हिमालय की पर्वत-श्रृंखलाओं, लद्दाख से लेकर नेपाल तक का कलाशिल्प का विवेचन एक व्यापक दृश्य प्रस्तुत करता है । भिन्न पर्वतीय प्रदेशों की अपनी शिल्पकला की विशिष्टताओं का जहां उद्‌घाटन हुआ है वहां पड़ौसी प्रदेशों के प्रभाव विस्तार व कलासाम्य का भी दिग्दर्शन कराया गया है । पर्वतीय प्रदेशों में भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, प्रशासनिकादि कारणों से ललित-कलाओं का अपने ढंग से विकास हुआ है । यह पुस्तक इस तथ्य को हमारे सामने बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है ।

मदनजीत सिंह ने अपनी ऊपरोक्त पुस्तक में शिवालिक 'श्रृंखला' के अंतर्गत कई दुलर्भ चित्र पहली बार दिए हैं । हिमाद्रि तथा कैलाश तो शिव की साधना स्थली है ही । अपनी अर्धाङ्गिनी शक्ति के साथ वह हिमालय की संस्कृति पर छाए हुए हैं । शिव शक्ति के नाना रूप यहां के मन्दिरों में उपलब्ध हैं । शिव कहीं शूलपाणि है, तो कहीं महाकाल, महाभैरव, पंचानन, महादेव, महायोगी आदि और वैसे ही शक्ति कहीं दुर्गा है तो कहीं महिषासुर-मर्दिनी काली और कहीं पार्वती । न जाने कितने विभिन्न रूपों में इन की पूजा इस पर्वतीय आंचल में होती आ रही है ।

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के आस-पास भक्ति की नई धारा ने इस पर्वतीय अचल को भी प्रभावित किया । फिर यहां की चित्रकला भितिचित्रों तथा मूर्तियों में राम आए, कृष्ण आए, विष्णु आए और इस प्रकार गुप्त-प्रतिहार, परमार, पाल, ललित कलाओं का प्रसरण यहां हुआ ।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि कला की नई दृष्टि देने में ब्रिटिश कलामर्मज्ञों का भी बड़ा हाथ है । हम अपने मंदिरों को मात्र धार्मिक स्थान ही मानते रहे हैं । यहां की अनुपम कला की ओर हमारा ध्यान नहीं गया । जे० सी० फ्रैंच ने हिमालय कला[1] में विशिष्ट साहित्यिक शैली में यहां की श्रेष्ठ कलात्मक उपलब्धि के प्रति पाठकों को जागरूक किया ।

मूर्तियों के साथ साथ मुखौटों की कलात्मकता की ओर भी इंगित किया गया । नाग और गुंगा पूजा की परम्परा के रहस्यों का उद्‌घाटन किया गया । भिति चित्रों के महत्व का दिग्दर्शन कराया गया । यहां के राजा-रानी, सामन्त व अन्य लोगों के सुन्दर चेहरे-मोहरों की अपनी ही महत्ता तथा सौन्दर्य है बौद्धमठों व बिहारों की मूर्तियों का महत्व सामने आया । लगता है कि हिमालय ने बड़े-बड़े ऋषि-मुनि ही इस देश को नहीं दिए हैं इसने महान कलाकार भी उत्पन्न किए हैं । ललित कलाओं में मूर्तिनिर्माण कला की भी विशिष्ट उपलब्धियां हैं तथा फ्रैंच, व मदन जीत सिंह जैसे

1. French, J. C,—Himalayan Art, 1931.

Scanned with CamScanner

कला-पारखियों ने इसे हमारे सामने स्पष्ट कर दिया है। कहना न होगा कि हिमाचल की मूर्ति निर्माण कला अथवा शिल्प अत्यन्त विकसित तथा कलात्मक रहा है और यह हम सभी के लिए अत्यन्त गौरव की बात है।

ज़िला गेज़ेटियर

जिसे श्वेत लोगों का भार या दायित्व (ह्वाइटमैन्ज़ बर्डन) उपहार रूप में कहते ह, वह एक दृष्टि से कुछ सीमा तक बहुत ठीक है। सामन्तयुगीन भारत में राजा या सामन्त की सनक ही सर्वोपरि थी। जिसको जो जागीर दे दी तथा जो भूमिकर किसी से लिया उसका कोई ठीक ठोस माप नहीं था। राजकीय खज़ाने में जो नज़राना के तौर पर आ गया, ठीक है अन्यथा लूट-खसूट करके विलास व जश्नों की सामग्री जुटाई जाती थी। अंग्रेज़ों ने पहली बार व्यवस्थित भूमि बन्दोबस्त किया यद्यपि उसके पहिले मुगल काल में राजा टोडरमल ने इस सम्बन्ध में अपनी सूझ-बूझ तथा विलक्षण बुद्धि का परिचय अवश्य दिया था।

अंग्रेज भारत में लगभग दो सौ साल तक शासक बन कर रहे। उन्होंने भारत का शोषण किया तथा शासन सत्ता बनाये रखने के लिए नृशंस अत्याचार तथा रक्तपात भी किया। फिर भी यह जाति स्पेन व पुर्तगाल के उपनिवेशवादियों से कहीं सभ्य-संस्कृत थी, यह मानने से इनकार नहीं किया जा सकता। यही नहीं पहली बार भारत के इतिहास में राजनैतिक एकता सम्भव हो पाई तथा सम्पूर्ण देश शासन के एक सूत्र में बांधा जा सका। देसी रियासतें भी थीं परन्तु उन पर ब्रिटिश शासन सर्वथा हावी था। शासन तन्त्र के साथ साथ एक कानून की देन भी इन्हीं लोगों की है।

भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन में अंग्रेज़ी माध्यम से प्राप्त इंगलैण्ड फ्रांस, अमेरिका आदि देशों के स्वतन्त्रता व लोकतन्त्र की उन्मुक्त विचारधाराओं का ज्ञान भी एक महत्व-पूर्ण कारण रहा है। ब्रिटिश व अन्य यूरोपियनों में कुछ लोग भाषा व ललित कलाओं के मर्मज्ञ भी थे। विलियम जोन्स, मैक्समूलर, मैकडानल जैसे भाषाविदों ने संस्कृत का भी अध्ययन किया तथा प्राचीन जर्मन, ग्रीक, लैटिन, ऐंगलो सेक्शन फ़ारसी के साथ इस का साम्य देखा और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का जन्म हुआ। संस्कृत के ज्ञान के साथ-साथ यहां की कला व संस्कृति की महानता व दिव्यता से शेष संसार भी परिचित हुआ। कला-पारखी अंग्रेज़ों व यूरोपियनों के प्रयास तो सदा स्तुत्य हैं ही परन्तु ब्रिटिश प्रशासकों ने जिला गेज़ेटियरों (देसी रियासत गेजटियरों) में ज़मीन-जंगलात, पशु-पक्षी, भूगोल-इतिहास के ज्ञान के साथ-साथ यहां के स्थापत्य, मूर्ति-निर्माण कला, चित्रकला, संगीत-नृत्य आदि के सम्बन्ध में भी खूब खोज कर उपयोगी विवरण दिया है।

उदाहरण के रूप में पंजाब ज़िला गैज़ेटियर के सातवां अंक भाग 'क' को ही लें[1]। इसमें कांगड़ा जिला का वर्णन है तथा इसका प्रकाशन काल, 1924–25 का है। इसमें न केवल कांगड़ा घाटी की भौगोलिक स्थिति का ही ज्ञान होता है बल्कि प्राचीन इतिहास व संस्कृति का भी परिचय मिलता है। उस समय के लोगों के रीति-रिवाजों, रहन सहन,

1. Punjab District Gazetteers, Vol. VII Part A: Kangra District (1924-25)

खान-पान तथा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का भी वर्णन मिलता है। यहां के स्थापत्य, मन्दिरों की मूर्तिनिर्माण कला तथा भाषा का भी अच्छा उद्घाटन किया गया है।

इसमें महाराजा संसारचन्द्र का उद्भव, कांगड़ा चित्रशैली का विकास तथा अन्य ललित कलाओं के प्रचार प्रसार का बड़ा ही रोमांचक वर्णन मिलता है। पहाड़ी राजाओं के परस्पर ईर्ष्या व विद्वेष का भी अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है और यह सब बड़ा ही नाटकीय तथा विचित्र लगता है। कांगड़ा के लोगों के बोहरा संस्कारों का भी विस्तृत विवरण दिया गया है। यहां की भाषा की विशेषताओं का भी विवेचन किया गया है। जिन पेड़, पौधों, पशु पक्षियों जलचर जीवों को हम देखा-अनदेखा कर देते हैं उनका सटीक वर्णन किया गया है।

यहां के प्रचलित धर्मों-सम्प्रदायों तथा धार्मिक विश्वासों की भी व्याख्या की गई है। विवाह और अन्य उत्सवों के धार्मिक व सामाजिक आचार-व्यवहार का बड़ा ही जीवन्त परिचय दिया गया है। यहां तक कि लोकगीतों व लोकोक्तियों की झलक भी मिलती है। इस काल के समाज का यथार्थ चित्र इन गेज़ेटियरों में सुरक्षित है।

समाजशास्त्र की दृष्टि से यहां की विभिन्न जातियों का बड़ा ही मौलिक तथा स्वाभाविक वर्गीकरण किया गया है। यहां की विभिन्न जातियों के सामाजिक उत्थान-पतन का भी अवलोकन कराया गया है। मानवीय भावनाओं तथा सम्वेदनाओं की पृष्ठ-भूमि में किये गये यहां की जातियों के भेद-उपभेद सिनेमा की सेलुलाइड चित्रावली के समान यथार्थ जीवन सा दृश्यांकन प्रस्तुत करते हैं। धर्म, कला व संस्कृति के स्मारकों की ओर भी इंगित किया गया है। सारांशतः इन गेज़ेटियरों द्वारा अपने प्रदेश से अपरिचित से हम इसे सही रूप से पहचान पाते हैं।

यात्रा-वर्णन

तिब्बत के समान ही हिमाचल प्रदेश भी कभी अगम्य दुर्गम्य देश था। इस प्रदेश के धार्मिक, सांस्कृतिक व कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों की यात्रा बड़े साहस तथा तथा वीरता का काम था। परन्तु पारखी तो पारखी ही होत हैं उनके लिए सुगम तथा दुर्गम क्या और अगम्य क्या रह सकता है!

एक बात और है कि जब इस प्रदेश के भूभाग दूसरे प्रदेशों से यातायात की दृष्टि से इतने संयुक्त व सम्पृक्त नहीं थे तब बहुत सी उपयोगी व ललित कलाओं की स्थानीय विशेषताएं भी सुरक्षित रह सकीं। उनमें वैसी मिलावट न आ पाई। फिर सभ्यता के आधुनिक यन्त्रों का भी आक्रमण यहां नहीं हो पाया। लगता है कि आधुनिक सभ्यता प्राचीन संस्कृति के पीछे हाथ धो कर पड़ी है। आधुनिक सभ्यता का प्रवेश तथा प्राचीन संस्कृति का बहिर्गमन युगगत ही होते हैं। उदाहरण के तौर पर यहां लोकसंगीत अपनी स्वर-लहरियों से यहां की सुरम्य उपत्यकाओं-अधित्यकाओं को गुंजार देता था। अब फिल्मी गीतों के ग्रामोफोन रिकार्ड धड़ाधड़ बज रहे सुनाई देते हैं। उन गानों का आधार चार व पांच संगीत हैं। यहां की युगों की साधना का फल लोक व शास्त्रीय संगीत नहीं।

आधुनिक उद्योग व औद्योगिको ने प्राचीन लोहे की वस्तुओं, उपयोगी व कलात्मक वस्त्रों, सुन्दर तथा आकर्षक आभूषणों, काष्ठशिल्प की अद्भुत कलाकृतियों, स्थानीय उपलब्ध बांस मिटी व इमारती लकड़ी से गृहनिर्माण की विशेषताओं—सब को मलियामेट कर दिया। बड़े बड़े कारखानों से निर्मित वस्तुओं की प्रतियोगिता में ये कलात्मक वस्तुएं कहां ठहर

Scanned with CamScanner

पाती हैं। ऐसा केवल हिमाचल प्रदेश में हुआ हो या हो रहा हो ऐसी बात नहीं है। यह उद्योगीकरण का विश्वव्यापक अभिशाप है और प्रत्येक कला-प्रेमी तथा कलापारखी विवश हो कर उपयोगी व ललित कलाओं के क्षय को देख रहा है।

आज तो हिमाचल प्रदेश की कलानिधि को सुरक्षित करना कठिन हो रहा है। परन्तु साहसिक कलापारखी यात्रियों ने अपने यात्रा विवरणों में उन्हें लिपिबद्ध करके तथा उनके छायाचित्र (फोटो) लेकर हम सब पर भारी उपकार किया है। आज बहुत से यात्रा विवरण उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं। परन्तु जो भी उपलब्ध सामग्री है वह यहां की ललित कलाओं को समझने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण तथा मूल्यवान है।

यात्रा विवरणों को पढ़ते समय एक सुखद आश्चर्य यह हुआ कि परमहंस योगी-महात्माओं ने भी अपने यात्रा विवरण लिखे हैं। अनन्तता और समसामयिकता के बोध का यह संगम बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है। हमारे यहां समसामयिक जीवन व परिवेश का वैसा युग-बोध नहीं रहा है अतः ऐसे यात्रा विवरण अपवाद ही सही, पर हैं अत्यन्त सुखद आश्चर्य।

परमहंस योगानन्द की 'योगी की आत्मकथा' तो विश्वविख्यात आत्मकथात्मक ग्रन्थ है। हिमालय के प्रति उनका भी परमपावन भाव तथा लालसा रही है। परन्तु जब हम स्वामी तपोवन जी महाराज की पुस्तक 'हिमगिरि बिहार[1]' पढ़ते हैं तब तो जैसे हिमालय के हिमाच्छादित दुर्गम घाटियों, वनों, व पवित्र नदियों के उद्गम स्थानों, मन्दिरों, विहारों व अन्य धार्मिक स्थानों के बाकायदा दर्शन करते चलते हैं। दो हजार मील का यह दुर्लभ भूभाग उन्होंने अधिकांशतः पदयात्रा से ही सम्पन्न किया है, वहां भी जहां बस व कार की सुविधा रही है। यह सब उन्होंने प्राकृतिक आनन्द लेने तथा एकात्म होने के लिए किया है।

तपोवन जी महाराज ने अपने ऊपरोक्त ग्रंथ के द्वितीय भाग में ज्वालामुखी, रिवालसर, मणिकर्ण, वशिष्ठ व त्रिलोकनाथ (चम्बा-लाहोल) की कठिन यात्राओं का विवरण दिया है। ज्वालामुखी कांगड़ा में कभी सैकड़ों मठ बिहार थे तथा यह संस्कृति व धर्म का प्राचीन केन्द्र था, इस ओर भी संकेत किया गया है। रिवालसर मण्डी के सम्बन्ध में पौराणिक आख्यानों द्वारा इसकी प्राचीनता तथा दीर्घकालीन धार्मिक महत्व की ओर इंगित किया गया है। मणिकर्ण वशिष्ठ तथा रोहतांग लाहोल होते हुए त्रिलोकनाथ की दुर्गम व रोमांचक यात्रा का विवरण हम जब पढ़ते हैं तो धार्मिक विश्वासों पर श्रद्धाभावना से कठिन तीर्थों की यात्रा का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। एक स्थान पर तपोवन जी महाराज लिखते हैं कि "हे श्रद्धा की देवी! तुम्हारी जय हो। संसार पर विजय पाने वाली तेरे बिना न कोई धर्म हो सकता है न मानव के लिए कोई आध्यात्मिक जीवन।" (पृ० 89)

यात्रा विवरण लिखने वालों में एक छोर पर तो ऐसे श्रदालु धार्मिक यात्री हैं; कहना चाहिये कि तीर्थ-यात्री है तो दूसरी ओर दीन दुनिया की खोज व आनन्द

1. Tapovanji Maharaj Wanderings in the Himalayas (1960)

लेने वाले घुमक्कड़ विद्वान पर्यटक। दूसरी प्रकार के पर्यटकों में सेंट् जे गोरे[1] का नाम लिया जा सकता है। कई स्थलों के दुर्लभ छायाचित्र इन्होंने दिए हैं तथा उस काल की सामाजिक व राजनैतिक स्थिति का अच्छा परिचय भी।

एक तीसरे प्रकार के यात्रा-विवरण भी मिलते हैं जो इस प्रदेश के राज्याधिकारियों द्वारा दिए गए हैं। ऐसा ही यात्रा विवरण एम०एस० गिल[2] का लाहोल-स्पीति से सम्बन्धित है। लाहोल-स्पीति में अपने जिलाधीश रूप में वहां के भ्रमणों तथा अवलोकन का ही परिणाम यह यात्रा-विवरण है। अपने यात्रा-विवरण को इन्होंने काफी रोचक बनाने का प्रयास किया है। मृतात्माओं का प्रेत के रूप में अजीब करतब करना, जिसे 'रोलांस' कहा जाता है तथा अन्य विचित्र विश्वास व जीवन पद्धति का वर्णन किया है। ऐसा ही अन्य पुरातन विवरण है हरकोर्ट[3] का। इनकी पुस्तक की विशेषता यह भी है कि हिमालय से सम्बन्धित अन्य यात्रियों ने भी इससे अपनी बात स्पष्ट करने के लिए उद्धरण दिये हैं। हरकोर्ट[3] कुल्लू-लाहोल-स्पीति में ब्रिटिश काल में असिस्टेंट कमीशनर रहे हैं। इन्होंने न केवल यहां के इतिहास भूगोल, कृषि, वन व्यवसाय, गृहोद्योग, जाति उपजातियों बल्कि यहां के लोगों के पहनावे, खान-पान, आभूषण, रहन-सहन, रीति रिवाज, स्थापत्य व मन्दिरों का भी सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया है।

ऐंड्रयू विलसन[4] तो हिमालय के पुजारी व भक्त हैं। अपनी पुस्तक का नाम भी इन्होंने 'हिम का आलय' अर्थात् हिमालय दिया है। एक पूरे अध्याय में इन्होंने 'हिमालय' शब्द की व्युत्पत्ति विश्व की मान्य भाषाओं में बताई है। यह हिमालय के सौन्दर्य व संस्कृति की व्यापकता का ही तो प्रमाण है।

लेफ्टिनेंट कर्नल जी०सी० ब्रूस[5] ने अपने ग्रन्थ कुल्लू तथा लाहोल में यहां के मन्दिरों की भूरी भूरी प्रशंसा की है। नारी यात्रियों में उल्लेखनीय कार्य किया है, जे० सी० मरे[6] ने विशेषतः यहां की प्रकृति व जन-जीवन को समझने में। हियू विस्लर[7] ने अपने ग्रन्थ 'ऊंचे हिमालय पर्वतों में' लाहोल-स्पीति के बौद्ध-विहारों व बहुपति प्रथा जैसी सामाजिक प्रथाओं के औचित्य की विवेचना की है।

1 Gore, ST. J.—Lights and shades of Hill life in the Afghan and Hindu Highlands of the Punjab: A Contost (1895)

2 Gill, M.S. : Himalayan Wonderland (Trawels in Lahoul-Spiti), 1972

3 Harcourt A. F. P.: The Himalayan Districts of Kooloo Lahaul and Spiti (Reprint 1972)

4 Wilson, Andrew : The Abode of snow (1875)

5 Bruce, G.C. : Kulu and Lohaul

6 Murray, J C. (Mrs.) : An Account of Three month tour from Simla to Lahaul (1884)

7 Whistler, Hngh : In the High Himalayas (1924)

Scanned with CamScanner

हिमालय के भूगोल, भूविज्ञान, पर्यटन, खानिकी, प्रकृति व कलाओं से सम्बन्धित साहित्य अपार और विशाल है। विश्व की सर्वोच्च चोटी माउंट एवरेस्ट तथा छब्बीस हज़ार से ऊंची अन्य तेरह चोटियों पर विजयारोहण का विवरण बड़ा ही रोमांचक है। इनमें से कुछ चोटियां वर्तमान हिमाचल प्रदेश में भी हैं। इन साहसिक यात्रियों में स्वेन हेडिन का नाम प्रमुख था। उनकी साहसिकता तो अनुश्रुतियों का विषय बन गई है।

हर्बट टिची[1] ने अपने ग्रन्थ 'हिमालय' में पर्वतारोहण के साथ साथ यहां के लोगों को समझने का भी प्रयास किया है। इसी प्रकार डा0 स्लीन[2] ने भी शिमला से किन्नौर तक की अपनी यात्रा में यहां के लोगों के जीवन, धार्मिक विश्वास, मन्दिरों आदि पर भी प्रकाश डाला है। इस प्रदेश की प्रथम खोज करने वालों में कनिंघम, मूरक्राफ्ट, फ्रेज़र आदि के नाम तो सदा परमादरणीय हैं ही।

भारतीय न्यायाधीश जी0 डी0 खोसला[3] ने अपने यात्रा-विवरण में लाहोल-स्पीति के बौद्ध मन्दिरों, वहां की कलागत उपलब्धियों को जौहरी की तरह देखा परखा है। भारतीय संस्कृति व साहित्य के विदग्ध पारखी महापण्डित राहुल सांस्कृत्यान[4] ने वहां के धर्म भाषा, कला को देखने परखने का अपनी पुस्तक 'किन्नर देश, तथा हिमालय दर्शन में प्रयास किया है। इनका भी हिमालय से सहज ही तादात्म्य है और हिमालय इनकी रगों में जैसे रस-बस गया था। यहीं की धरती में पले बढ़े लालचन्द प्रार्थी[5] का इसी दिशा में उल्लेखनीय प्रयास है 'कुल्लूत देश की कहानी'। लेखक हमें कुल्लू के सन्दर्भ में वैदिक काल व पुराण काल के अपेक्षतः अज्ञात तथा अपरिचित स्थलों में विचरण कराता हुआ एक विचित्र किन्तु जाज्वल्यमान लोक का साक्षात्कार करवाता है।

पहाड़ी चित्रकला

इस पर्वतीय अंचल की यदि कोई परमोज्ज्वल, शाश्वत और चिरन्तन उपलब्धि है तो वह है यहां की चित्रकला। पहाड़ी चित्रकला अथवा जिसे कुछ लोग सुविधा के लिए कांगड़ा चित्रकला (कांगड़ा कलम पहाड़ी चित्रकला के चरमोत्कर्ष का परिचायक है सम्भवतः इसी लिए यह नाम प्रचलित हो गया है) भी कहते हैं, भारत व संसार की प्रसिद्ध कलादीर्घाओं में स्थान रखती है। विश्व का कोई ही प्रसिद्ध संग्रहालय होगा जहां पहाड़ी चित्रकला की कलाकृतियां प्रदर्शित न की गई हों। छोटी छोटी पहाड़ी रियासतों तथा यहां के चितेरों का यह चमत्कार अद्भुत तथा अभूतपूर्व है ही।

1. Tichy, Herbert: Himalaya (1968)
2. Slean, W. G. N. Yander: Four Month's Compaign in the Himalayas (Ed. MDCCCCXXIX)
3. Khosla, G. D.: Himalayan Circuit (1956)
4. सांकृत्यायन, राहुल: किन्नर देश (द्वितीय संस्करण 1957)
5. प्रार्थी, लाल चन्द: कुल्लूत देश की कहानी (1971)

पहाड़ी चित्रकला का कार्यक्षेत्र जम्मू में बसोहली से लेकर कांगड़ा, गुलेर, मण्डी कुल्लू, चम्बा, कहलूर (बिलासपुर) कलम की अपनी विशेषताएं दर्शाता हुआ उत्तर प्रदेश में गढ़वाल तक विस्तृत है। वर्तमान हिमाचल प्रदेश अधिकांश चित्रकला की कलमों अथवा शैलियों का कार्यक्षेत्र रहा है। अतः पहाड़ी चित्रकला की उपलब्धियों के प्रति अपने को गौरवान्वित अनुभव करना स्वाभाविक ही है।

यह आश्चर्य और दुख की बात है कि हम अपनी अन्य सांस्कृतिक उपलब्धियों व विरासत की तरह इसके प्रति भी अनजान रहे हैं। अंग्रेज कला-समीक्षकों, डा0 आनन्द कुमार स्वामी, खाण्डेलवाला, एम0 एस0 रंधावा डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल आदि कला-पारखियों ने इस दिशा में सजग किया है। सम्भवतः अतिपरिचय अथवा कला-संचेतना का अभाव इसका कारण रहे हों। मात्र शब्द-ज्ञान से व्यक्ति कला पारखी नहीं हो जाता है। इसकी अपनी साधना, अपना रंग-ढंग तथा अपना कठोर अनुशासन है और विरला ही शिक्षित व्यक्ति इस ओर प्रवृत्त हो पाता है।

पहाड़ी चिकला के प्रमुख आलोचकों तथा कला-पारखियों में सर्वप्रथम हैं आनन्द के0 कुमारस्वामी[1]। उन्होंने 'भारत तथा इण्डोनेशिया का कला इतिहास' तथा 'राजपूत चित्र' में पहाड़ी चित्रकला के महत्व का दिग्दर्शन कराया है। इन की विलक्षण प्रतिभा, सूझ-बूझ, ललित शैली, आत्मानुशासन, संतुलित दृष्टि तथा संस्कृत रुचि ने भारतीय कला निधि को देश विदेशों में प्रचारित प्रसारित किया। कार्ल खण्डेलवाला[2] के वृहद् ग्रन्थ 'पहाड़ी लघुचित्र' में कई नये तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। यह ग्रन्थ पहाड़ी चित्रकला का व्यापक विवेचन करता है।

पहाड़ी चित्रकला के सन्दर्भ में विदेशी कला पारखियों में अन्य गणमान्य व्यक्ति हैं जे0सी0 फ्रेंच[3]। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'हिमालय की कला' में अपने यात्रा-विवरणों में यहां के सुन्दर व कलात्मक भितिचित्रों व लघुचित्रों का भी संकेत किया है तथा अपने ग्रन्थ में कई दुर्लभ चित्र प्रस्तुत किए हैं। दूसरे विदेशी कला-समीक्षक हैं डब्ल्यू0 जी0 आर्चर[4]। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'पंजाब की पहाड़ियों में भारतीय चित्र' तथा 'भारतीय लघुचित्र' में पुंछ कलम तथा जम्मू कलम को प्रकाश में लाया है तथा बसोहली कलम से इनका अस्तित्व अलग सिद्ध किया है।

पहाड़ी चित्रकला पर उल्लेखनीय तथा प्रमुख कार्य किया है डा0 एम0एस0 रणधावा[5] ने। इन्होंन पहाड़ी आंचल के विशिष्ट मार्गों की पहाड़ी चित्रकला, लघुचित्रों, भित्तिचित्रों तथा ग्रन्थ विशेष से सम्बन्धित चित्रों से सुसज्जित अनेक पुस्तकें लिखी हैं। अन्य भारतीय कला-समीक्षकों में वासुदेवशरण अग्रवाल, एस0एल0 दासगुप्त, ओ0सी0 गांगुली, ऐन0सी0 मेहता, मुकन्दीलाल, मोती चन्द्र, आर0 एन0 सिंह, जगदीश मित्तल, अजित घोष, डा0

1. Coomar swami Anand, K.: (i) Rajput Paintings
   (ii) History of Indian and Indonesian Art, (1958)
2. Khandalvala, karl: Pahari Miniature Paintings (1958)
3. French. J. C.: Himalayan Art (1931)
4. Archer W G: Indian Paintings in the Punjab Hills (1952)
5. Randhawa, M.S.
   (i) Basohli Paintings
   (ii) Kangra Paintings of Bhagvata Purana, etc.

Scanned with CamScanner

मुल्कराज आनन्द आदि के नाम प्रमुख हैं जिन्होंने भारतीय चित्रकला सम्बन्धी अपनी पुस्तकों तथा कला-पत्रिकाओं (मार्ग, रूपम्, रूपलेखा आदि) में पहाड़ी चित्रकला सम्बन्धी कई विवादास्पद विषयों पर व्यापक चर्चा की है तथा किन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचने का प्रयास किया है । इस प्रकार सुशिक्षित व कला-प्रेमी लोगों में इन्होंने पहाड़ी चित्रकला के प्रति संचेतना जागृत की है । यह व्यापक चर्चा परिचर्चा, फुटकर लेख पहाड़ी चित्रकला की अपूर्व सांस्कृतिक विरासत तथा महान कला आन्दोलन की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं ।

पहाड़ी चित्रकला की जन्मभूमि से जन्म से ही जुड़े हुए युवा कला-पारखी हैं किशोरी लाल वैद्य[1] । अपने ग्रन्थ 'पहाड़ी चित्रकला' में इन्होंने अपनी धरती से संयुक्त होने तथा इसकी सजग, सचेत पहचान का परिचय दिया है । पहाड़ी चित्रकला से सम्बन्धित कई नई कलमों के अन्तर्गत मण्डी, कुल्लू, बिलासपुर कलमों में कुछ अभी तक अज्ञात चित्रकारों, उनकी वंशावली का परिचय दिया है तथा उनके कुछ दुर्लभ चित्र भी प्रस्तुत किए हैं । हिन्दी में पहाड़ी चित्रकला की आलोचना-विवेचना की यह पहली प्रामाणिक तथा कलात्मक साज-सज्जा से युक्त पुस्तक है ।

पहाड़ी स्थापत्य तथा संगीत कलायें

इस पर्वतीय अंचल के पहाड़ी लोग मैदानों की चमक दमक से इतना प्रभावित हो जाते हैं कि वहीं के रहन-सहन खान-पान पहनावा आदि को अपनाने लगते हैं तथा मकानों व अन्य भवनों का निर्माण भी वहीं के स्थापत्य के आधार पर करने लगते हैं । यह हीनता का भाव है तथा स्थापत्य के सिद्धान्तों का भी हनन है । यहां सौन्दर्य और उपयोगिता को दृष्टिपथ में रखते हुए भवन निर्माण किया जाना चाहिये । फिर विशिष्ट स्थापत्य-कला धरती विशेष की उपज होती है ।

विदेशी कला-समीक्षकों ने ही हमें पहाड़ी स्थापत्य के प्रति सजग व सचेत किया है । अपने निबन्ध 'हिमालय में स्थापत्य कला' में सिम्पसन[2] ने यहां के स्थापत्य की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया है कि किस प्रकार लकड़ी व पत्थरों को सन्तुलित करते हुए यहां के भवनों का निर्माण किया गया है । यह स्थापत्य लकड़ी तथा पत्थरों को अधिक महत्व देता है क्योंकि ये दोनों सरलता से सुलभ हो जाते हैं । कुल्लू लाहौल-स्पीति के मन्दिरों के सम्बन्ध में स्थापत्य की विशेषताओं को बताते हुए हरकोर्ट[3] ने मन्दिरों को (*i*) पिरामिड प्रकार के (*ii*) आयताकार तिरछी छतों वाले (*iii*) आयताकार परन्तु पिरामिड के स्तरों वाले तथा (*iv*) छोटे आयताकार में विभक्त किया है । इन चार प्रकार के मन्दिरों में पाचवां प्रकार श्रीमति पैनीलोप चैटवोड[4] ने अपने निबन्ध 'पश्चिमी हिमालय के मन्दिर' में और जोड़ा है । और इसे वे सतलुज घाटी

1. वैद्य किशोरी लाल पहाड़ी चित्रकला (1969)
2. Simpson William Architecture in the Himalayas (1883)
3. Harcourt A.F.P. : The Himalayan District of Kooloo, Lahoul and Spiti (1972 Reprint)
4. Chetwode Penelope

प्रकार (सतलुज वैली स्टाइल) कहती हैं। एस0एल0 कायस्थ[1] ने अपने प्रबन्ध में कांगड़ा मण्डी व चम्बा के घरों की बनावट को संकेतित किया है।

जेम्स फर्गुसन[2], जो स्थापत्य कला के समीक्षकों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं, भारतीय स्थापत्यकला पर मुग्ध हैं। वे लिखते हैं कि "...इसकी (भारत की) कलाएं मौलिक तथा बहुविध हैं तथा उसकी सभ्यता के स्वरूप इतने सतत बदलते रहे हैं कि ऐसा शायद ही कहीं घटित हुआ है ।" इन्होंने उस ग्रन्थ में कांगड़ा के मन्दिरों, विशेषतः बैजनाथ के वैद्यनाथ मन्दिर तथा सिद्धनाथ मन्दिरों का स्थापत्य सम्बन्धी सूक्ष्म तथा विस्तृत विवरण दिया है ।

जहां तक संगीत व काव्य का सम्बन्ध है इसकी रस-माधुरी तो जनमानस में सतत् प्रवाहमान रही है । फिर भी परिगणना के तौर पर हिमाचल प्रदेश लोकसम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित 'हिमाचल के लोकगीत', 'हिमाचल की लोक गाथाएं' ऐस0 ऐस0 ऐस0 ठाकुर की 'हिमाचली लोक लहरी', डा0 पद्म चन्द्र काश्यप की पुस्तक 'कुल्लुई लोक साहित्य', एम0एस0 रणधावा की पुस्तक 'कुल्लू के लोक गीत' तथा यहीं के लोक साहित्य पर पी-एच0 डी0 के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध उल्लेखनीय हैं ।

हिमालय से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन कोई ही विरला अपनी जन्मावधि में कर सकता है। हिमालय विश्व का सर्वोच्च पर्वत-शिखर ही नहीं दो हज़ार मील तक विस्तृत विशाल पर्वत श्रृंखला भी है । । हिमालय की इसी उच्चता और विशालता का ही चमत्कार है कि इसके किसी भाग व प्रदेश विशेष पर लिखी पुस्तक भी हिमालय की विशालता, गरिमा की अधिकारिणी बन जाती है । हिमाचल प्रदेश पर लिखा साहित्य भी इसी दृष्टि से इतना विशाल व बिखरा हुआ है और इसका एक छोटा सा पक्ष 'ललित कलाओं की परख' भी अपने आप में इतनी विस्तृत और असीम सम्भावनाएं लिए हुए है कि वर्तमान लेख में उस सब की समीक्षा तथा समीक्षकों का विवरण सम्भव नहीं है। यदि कोई ललित-कला पारखी मेरी अनभिज्ञता व सीमित जानकारी के कारण छुट गया हो तो उसका निहितार्थ उसकी देन के प्रति प्रश्नचिन्ह लगाना कदापि नहीं है यह तो वस्तुतः सम्बन्धित विषय की विशदता तथा व्यापकता का ही फल है कि इसे इस लघु निबन्ध में नहीं बांधा जा सकता । फिर भी यत्किंचित सिंहावलोकन का जो प्रयास किया गया है वह तो जिज्ञासा व अनुसन्धान के लिए मार्ग-दर्शक बन सकता है । वैसे पुराणकार के इस मत से सहमत होना ही होगा कि "मैं देवताओं के सैंकड़ों युगों में भी हिमालय की महिमा का वर्णन न कर पाया।"

—राजकीय डिग्री कालेज,
मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

1. Kayastha, S. L., : The Himalayan Beas Basin: A study in Habitat, Economy and society (1964)
2. Fergusson, James : History of India and Eastern Architecture, Vol. I (1876)

Scanned with CamScanner

सुकेती का जीवावशेष-उद्यान

—कैलाश भारद्वाज

सृष्टि पर मनुष्य के विकास की कहानी पर्याप्त रोचक है। जीव-विज्ञानी इस पहेली को सुलझाने का यत्न कर रहे हैं कि प्राचीन काल में सर्वप्रथम मनुष्य का विकास पृथ्वी के किस भाग में हुआ होगा। मानव-विकास की कहानी को समझने के लिये हिमालय पर्वत एवम् उसकी शृंखलाओं की आयु को समझना आवश्यक हो जाता है। डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दु सभ्यता' में लिखा है कि आदि मानव पंजाब और शिवालिक पर्वत शृंखला की ऊंची भूमि पर विकसित हुआ होगा। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता तथा नृतत्व-विज्ञानी आर०सी० मजूमदार ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर आफ इण्डिया' में संकेत किया है कि शिवालिक की घाटियों में वृक्षों पर रहने वाले उस आदि मानव की हड्डियां मिली हैं जो शायद विकसित न हो सका। परन्तु यह बात सत्य नहीं है, पाषाण काल के औजारों तथा प्राचीन जीवावशेषों (fossils) के अध्ययन से यह सिद्ध हो गया है कि जीव-विकास के लिए हिमाचल प्रदेश का स्पादलक्ष (शिवालिक) क्षेत्र अत्यन्त उपयुक्त स्थल था और यहीं पर सर्वप्रथम मानव सभ्यता का श्रीगणेश हुआ। शिवालिक पर्वतमाला में अनेक स्थानों यथा सुकेती, नालागढ़, हरितल्यांगर (बिलासपुर), गुलेर तथा कांगड़ा में जो पाषाणीकृत अवशेष मिले हैं उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अति प्राचीन काल में इस क्षेत्र में आज से नितान्त भिन्न स्थिति थी और आरम्भ में यहां भीमकाय जीव विचरण करते थे। कालान्तर में मनुष्य का विकास हुआ। सुकेती जहां जीवावशेष उद्यान का विकास हो रहा है, पर्वतीय तथा प्राचीन संस्कृति के विकास का पुस्तकालय बन रहा है अतः उसके विषय में जानकारी होना वर्तमान सन्दर्भ में बहुत आवश्यक है।

हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले का सुकेती ग्राम रातों-रात विश्व के भू-गर्भीय मान चित्र पर उभर आया है।

नाहन नगर से मात्र 14 किलोमीटर की दूरी पर बसे इस अज्ञातनामा ग्राम के आकस्मिक कायाकल्प का कारण यह है कि यहां 'शिवालिक-फासिल-पार्क' बनाया जा रहा है। यह अपने ढंग का एक-मात्र जीवावशेष उद्यान होगा तथा भू-मण्डल के नब्बे प्रमुख उद्यानों में से एक होगा।

इस उद्यान की स्थापना का काम तीन चरणों में बांटा गया है। पहले चरण का काम इस वर्ष के मार्च महीने तक पूरा भी हो चुका है। इसके अन्तर्गत फ़ाइबर ग्लास तथा रेज़िन में ढले कुछ प्रागतिहासिक पशुओं के पूर्णाकार प्रतिरूप खड़े किये गए हैं। ये पशु लगभग तीस लाख वर्ष पूर्व सुकेती-क्षेत्र में विचरण किया करते थे। इन में 15 सें०मी० लम्बे खड्ग जैसे ऊपरी कीलों वाला एक मीटर ऊंचा शेर है, जबरदस्त आकार वाला छः छेदक दान्तों वाला दरयाई घोड़ा है और विशालकाय खोल वाला 3.3 मीटर लम्बा कछुआ है।

दूसरा चरण मार्च, 1975 तक पूरा किया जायेगा। इसके दौरान प्रागैतिहासिक हाथी तथा जिराफ़ के पूर्णाकार प्रतिरूप स्थापित किये जायेंगे। ये भी फ़ाइबरग्लास व रेज़िन में ढले हुए होंगे। हाथी 4.2 मीटर ऊंचा होगा। उसके दोनों दांत लगभग 3 मीटर लम्बे होंगे। जिराफ़ 2 मीटर ऊंचा होगा तथा उसकी विशाल खोपड़ी पर उसके अवशेष के अनुसार सींगों के विशाल ठूंठ होंगे।

और तीसरे चरण में बनाया जायेगा शिवालिक-पशु-जगत के अवशेषों का स्थायी अजायबघर, जिस में अभी तक उपलब्ध सभी जीवावशेष रखे जायेंगे। यों अस्थायी अजायबघर की स्थापना तो की भी जा चुकी है। शिवालिक क्षेत्र से अभी तक जितनी प्राप्ति हुई है, उसमें से कुछ इस प्रकार हैं, 2.5 मीटर ऊंचे बराह के दन्तावशेष, दरियाई घोड़े की खोपड़ी और दांत, जिराफ़ के अवशेष, बैल इत्यादि के दान्तों के अवशेष, हाथी का पिंजर तथा विशाल काय कछुवे के खोल व अन्तर्त्वचा के अवशेष। यह चरण 1975 के अन्त तक पूरा हो जाने की आशा है।

इसके अतिरिक्त सुकेती में और भी बहुत कुछ करने की योजना है: उस क्षेत्र को घने जंगल से भरना है, एक झील का निर्माण करना है, एक पशु-उद्यान व एक पशु-बिहार बनाना है, बाग़-बग़ीचे लगाने हैं तथा पर्यटकों के लिये आरामदायक आवास-गृहों की रचना करनी है।

सुकेती के जीवावशेष उद्यान का उद्देश्य बहुमुखी है। शिक्षा, विज्ञान और मनोरंजन—तीनों ही कार्यों के लिये अवसर जुटाए जाने हैं यहां। ख्याल है कि इस उद्यान की स्थापना से प्राकृतिक परिवेश को समझने, उसे कायम रखने तथा उसका विकास करने में मदद मिलेगी। एशिया में यह पहला उद्यान होगा जो जीवावशेष-स्थल पर ही बनाया जायेगा।

असल में बात यह है कि शिवालिक है ही जीवावशेषों का अनुपम व अक्षय भण्डार। इस शैल को तो भूगर्भ-शास्त्र का ऐसा ग्रन्थ समझना चाहिये जिसकी चट्टानों के पृष्ठों में जीवन-विकास की गाथाएँ भरी पड़ी हैं।

शिवालिक रेतीले पत्थर, मिट्टी और नदियों द्वारा बहा कर लाई गई सामग्री का विशाल ढूह है। इस की प्राचीनतम चट्टानें प्रायः 2,50,00,000 वर्ष पुरानी हैं।

किसी ज़माने में शिवालिक बाढ़ों का क्षेत्र था—भूमि दलदली थी। जंगलों का विकास वहां सम्भवतः क्रमशः ही हुआ था। जंगली वातावरण में सघनता आ जाने के बाद ही वहां ऐसे हालात पैदा हुए, जिनमें शिवालिक के प्रागैतिहासिक पशु-जगत का प्रसार-विस्तार हुआ।

शिवालिक-क्षेत्र के पशुओं की सूची बहुत लम्बी है। उनमें से कुछ प्रमुख हैं: तीन खुराग्रांशों वाले घोड़े, भैंसे, बैल, सुअर, हाथी, लकड़ हिरण (जिराफ़), मनु-वानर, गेंडे, दरियाई घोड़े, भालू, लकड़बग्घे, तथा शेर इत्यादि। इन पशुओं की कई-कई जातियां वहां मौजूद थीं। उदाहरण के लिए शिवालिक हाथी के 13 प्रकार थे, जिराफ़ की कम से कम 4 किस्में थीं, मुख्य सुअर कम से कम दो तरह के थे, गेंडों के अनेक वर्ग थे तथा कछुवों की कई जातियां थीं।

Scanned with CamScanner

ये पशु, आज के पशुओं के मुकाबले में तो दानवीय आकार के थे: गेंडा 5.5 मीटर ऊंचा, सुअर 2.5 मीटर ऊंचा, जिराफ 2 मीटर ऊंचा, हाथी 4.2 मीटर ऊंचा और कछुआ 3.3 मीटर लम्बा था।

विद्वानों का विचार है कि लगभग 20,00,000 वर्ष पूर्व यह इलाका हिम-युग की लपेट में आ गया था, जिस में यहां के अधिकांश स्तनपायी-पशु नष्ट हो गए थे। जो थोड़े बहुत बचे, वे दूसरे क्षेत्रों में भाग गए थे। परिणाम यह निकला कि इतिहास-पूर्व के उन पशुओं के अवशेष वहीं पड़े रह गए तथा कालान्तर में चट्टानों में जमकर सुरक्षित हो गए। इसीलिए शिवालिक-श्रृंखला संसार के जीवावशेषों के सम्पन्नतम भण्डारों में से एक मानी जाती है तथा इसीलिए विद्वानों की दृष्टि इस क्षेत्र पर बहुत पहले जम गई थी।

शिवालिक के जीवावशेषों के एकत्र करने का आरम्भिक प्रयास कैप्टन वेब् ने किया था। उसने हिमालय के फ़ुटहिल से चन्द फ़ासिल अस्थियां प्राप्त की थीं। इस के अतिरिक्त डा० पिल्मि द्वारा वर्णित पशुओं की कई खोपड़ियां मार्कण्डा नदी से बहुत पहले प्राप्त की गई थीं। कहना न होगा कि मार्कण्डा का वह स्थल सुकेती से दूर नहीं है तथा विदेशियों की जो रुचि शिवालिक-फासिल्स में आज भी है, उससे सम्बद्ध सूचनाएं तो समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती ही रहती हैं।

मगर जीवों के ये अवशेष कैसे बनते हैं तथा इतने लम्बे काल तक कैसे सुरक्षित रहते हैं?

वास्तव में समयानुसार भूमि-पिण्ड हवा और पानी के प्रभाव से क्रमशः क्षीण होते रहते हैं। कटाव की इस प्रक्रिया से टूटे छोटे-छोटे कण समुद्रों, झीलों तथा नदियों के पेंदों में एकत्र होते रहते हैं। अन्ततः यह तलछट सख्त होने लगती है। पुराने जीवों के जो अवशेष इन तलछटी चट्टानों में फंसे रह जाते हैं, वे फ़ासिल बन जाते हैं। इन चट्टानों में प्रायः सख्त अंग जैसे-खोल, हड्डियां, दांन्त, पिंजर आदि सुरक्षित रह जाते हैं। पेड़-पौधों के भी काष्ठ-टिश्यूज इन चट्टानों में बने रहते हैं। बल्कि कभी-कभी तो अण्ड, डाइनासोर के चरण-चिन्ह, कुछ प्राचीन सृष्टियों के उदर-सोपान, कीट-पतंगों के छिद्र आदि भी जीवावशेष बन कर रह जाते हैं। वास्तव में जीवावशेष अथवा फ़ासिल कहते ही उन अवशेषों को हैं, जो हजारों-लाखों वर्ष पुराने जीवन की सूचना देते हैं।

इतना कुछ होने पर भी जीवावशेषों का सुरक्षित रहना सरल नहीं है। वास्तविकता यह है कि अधिकांश पशु-पौधे तो जीवावशेषों का रूप ले ही नहीं पाते: अधिकांश पौधे या तो नष्ट हो जाते हैं या फिर पशुओं के द्वारा खा लिये जाते हैं।

अनेक पशु भी अन्य पशुओं द्वारा हज़म कर लिये जाते हैं।। या फिर मरने के तुरन्त बाद ही उनके विधायक-तत्व विलग हो जाते हैं। इस प्रकार बहुत कम जीव-जन्तु ही ऐसे हालात में मरते हैं कि उनके अवशेष बाद में प्राप्त हो सकें। इन में से भी अनेक काल-क्रम से नष्ट हो जाते हैं।

कुछ अवशेष चट्टानों के दबाव में आकर टूट जाते हैं, कुछ कायाकल्प की प्रक्रिया के शिकार हो जाते हैं और कुछ चट्टान पिघलने से खत्म हो जाते हैं।

बल्कि जो गिने-चुने पशु-पौधे अवशेषों के रूप में सुरक्षित रहते भी हैं, उन सब तक भी आदमी की पहुंच नहीं हो सकती। सच्चाई यह है कि उनको भी बहुत ही कम संख्या में प्राप्त किया जा सकता है।

इस दृष्टि से सुकेती बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। वह उस शिवालिक के चरणों में बैठा है, जहां आज से बीस लाख साल पूर्व उतरे हिम-युग ने उसे जीवावशषों का अनुपम भण्डार बना दिया है।

शिवालिक को तो यदि जीवावशेषों का प्राकृतिक अजायबघर भी कहें, तो भी अत्युक्ति न होगी। एक-एक चट्टान की एक-एक परत में प्रागैतिहासिक युग साकार बैठा है।

प्रश्न पूछा जा सकता है: इस प्रकार के जीवावशेष उद्यान का उपयोग क्या है?—लाखों वर्ष पहले मरे-गले उन पशुओं की हड्डियों का हम क्या करेंगे?

यदि ऊपरी दृष्टि से देखें तो यह प्रश्न निरुत्तर कर देने वाला प्रतीत होता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मनुष्य की जिज्ञासा की सब से अधिक उपयोगी दिशा यह है कि आज वह जिस स्थिति में है, उस तक पहुंचा कैसे है? क्या वह आदि काल में इसी रूप में जन्मा था या उसका वर्तमान स्वरूप विकास के किसी सिलसिले का परिणाम है?

विकासवाद का सिद्धान्त साधारणतः डार्विन के नाम के साथ जोड़ा जाता है। विकास के सिद्धान्त की पुष्टि में ही जीवावशेषों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया था। इसके विरूद्ध यह तर्क दिया गया कि जीवावशेष तो सर्व शक्तिमान ईश्वर ने इन्सान की आस्था को जांचने के लिये भूमि में दबाए थे। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जीवावशषों की उचित उपयोगिता को पहचान लिया गया था।

और हमारा अवतारवाद तो है ही मूलतः विकास का सिद्धान्त। हमारे यहां गिनाए गए मत्स्य (जल-जीव), कूर्म (जल थल—दोनों जगह रहने वाले जन्तु), वराह (स्थल-जीव), नृसिंह (मानव-पशु रूपी जीव), वामन (आदि मानव) आदि अवतार वस्तुतः जीवन विकास के सोपान ही हैं।

आज तो स्कूल जाने वाले बच्चे भी यह जानते हैं कि जीवन एक कोश से आरम्भ हो कर क्रमशः ही बहुकोशीय हुआ है। और अन्त में विकसित हुआ है जटिल कोशीय प्राणी—मानव। यह सब कुछ विकास के सिलसिले के अन्तर्गत ही हुआ है। और इस सिलसिले को समझने-समझाने का एकमात्र प्रामाणिक आधार जीवावशेष ही है।

जैसा कि हमें मालूम है, जीवन मुख्यतः अपने परिवेश की देन है। सृजन, सिंचन और संहार अन्ततः परिस्थितियों पर ही निर्भर हैं। परिस्थियां ज्यों-ज्यों अनुकूल होती गई हैं, जीवन विकसित होता गया है।

जीवन का विकास किन हालात में हुआ—इसका ज्ञान हमारे लिये बड़ा लाभदायक सिद्ध हो सकता है। अप्रत्याशित वैज्ञानिक उन्नति के कारण आज सीमित क्षेत्र में अनुकूल परिवेश के निर्माण की मानवीय सम्भावनाएं बढ़ गई हैं। साथ ही प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के सूत्र भी हाथ आ रहे हैं।

अतः यदि हम यह मालूम कर सकें कि किस प्रकार की परिस्थितियों में जीवन की कौन सी किस्म फूली-फली है, तो यह जानकारी बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

Scanned with CamScanner

समझने के लिये अत्यन्त विश्वसनीय आधार ह,
और जीवावशेष प्राचीन परिस्थितियों को समझने के लिये अत्यन्त विश्वसनीय आधार ह, क्योंकि विशेष प्रकार का जीवन विशेष प्रकार के हालात से सम्बद्ध होता है। ग्रीन लैण्ड की प्राचीन चट्टानों में ऐसे पौधों के अवशेष मिले हैं जिन्हें ऊष्ण जलवायु की आवश्यकता थी। इस से पता चलता है कि उस समय उस क्षेत्र का तापक्रम हलका था।

इसके अतिरिक्त विश्व के बड़े-बड़े भू-भागों से जुड़ी हुई भू-गर्भीय घटनाओं का सही व संतोषजनक स्पष्टीकरण भी पशु-पौधों के सुरक्षित अवशेषों से ही मिल सकता है। भू-गर्भ-शास्त्र के इतिहास में जीवावशेष संकेतों का काम करते हैं। यदि किसी जीव विशेष का अवशेष तलछटी चट्टान की किसी परत विशेष में पाया जाता है, तो उसका निष्कर्ष यह होगा कि जब वह परत बन रही थी, तो वह जीवविशेष जीवित था।

इस प्रकार शिलाओं के काल-निर्धारण में जीवावशेष सब से अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार भू-भागों तथा अन्ततः भूमि की आयु निश्चित करने में सहायता मिलती है।

परन्तु जीवावशेषों के इतने अधिक उपयोगी होने के बावजूद भी यदि ये अवशेष उन चट्टानों में ही बन्द पड़े रह जाएं तो मनुष्य को उस से क्या लाभ होगा?

इसी प्रश्न पर विचार करके सुकेती में जीवावशेष उद्यान स्थापित करने की योजना बनाई गई है, ताकि उन अवशेषों से लाभ उठाया जा सके—वैज्ञानिक वहां आकर अनुसंधान करें तथा अपने निष्कर्षों को मानव-हित में प्रयुक्त करें। दूसरी ओर जन-साधारण भी इस प्राकृतिक धरोहर को समझें-सराहें। दूसरे शब्दों में सुकेती अन्वेषण और मनोरंजन —दोनों का ही आधुनिक तीर्थ बन जाए।

बल्कि मेरे विचार से तो शिवालिक जीवावशेष-उद्यान एक और दृष्टि से और भी अधिक महत्व का है: मैं समझता हूं कि यदि आज का आदमी अपने से पूर्व प्राणियों के इतिहास से अनभिज्ञ रह जाए तो अनजाने ही प्रकृति की किसी खिलवाड़ का शिकार हो कर विकास-क्रम से कट जायेगा। उस अवस्था में उसके अवशेष भी कालान्तर में निर्मित चट्टानों में बन्दी बन कर रह जायेंगे।

तब हो सकता है, हालात के अनुसार कोई नया ही प्राणी पैदा हो। वह मानव-अवशेषों की खोज करे, उन्हें चट्टानों से निकाले तथा अजायबघरों में सजाए और जिस प्रकार आज सुकेती में पच्चीस-तीस लाख साल पुराने पशुओं के पूर्णाकार प्रतिबिम्ब खड़े किये जा रहे हैं, वैसे ही प्रतिरूप मनुष्य के भी खड़े किये जाएं तथा उनके परिवेश का अध्ययन-अन्वेषण किया जाए।

किन्तु आज का छोटा सा ग्राम सुकेती देश विदेश के वैज्ञानिकों के लिये अध्ययन-अनुसंधान का केन्द्र बन कर प्रकृति के किसी ऐसे षड़यन्त्र को विफल करने का सफल प्रयास कर सकता है।

—भारद्वाज आश्रम रानीताल बाग,
नाहन (हि० प्र०)

.कालिदास के ग्रन्थों में हिमालय—वर्णन

—कु० सरोज शर्मा

बात लगभग तीसरी शताब्दी से आरम्भ करते हैं। रोमन साम्राज्य गिरा उससे सासानी साम्राज्य दृढ़ हुआ उसने भारत के पश्चिम में रहे-सहे कुषाण साम्राज्य को अन्तिम धक्का लगाया। सासानियों की सीमा में जाने में असमर्थ भारत का व्यापारी अपने पोतों को बंगाल की खाड़ी और हिन्द महासागर के पानियों पर तैराने लगा। उन पोतों पर सामान के अतिरिक्त एक अनोखी वस्तु भारत से बाहर गई और वह थी भारत की संस्कृति।

भारत के कुषाणी साम्राज्य के गिरते प्रासाद में गुप्तों ने राष्ट्रीय संस्कृति का सीमेंट लगाया। गुप्तों ने मौर्यों के केन्द्रीयकरण और कुषाणों की शिथिलता दोनों ही गुणों को ग्रहण किया। उस युग में ब्राह्मण-ज्योतिषी, पंडित-पुरोहित, साधु-संत सब के सब पट्टेदार-जागीदारदार बन रहे थे। एक सर्वसामान्य अभिजात वर्ग की छटा फहराने लगी थी।

गुप्तकाल की समृद्धि के साहित्यिक पक्ष का सिरमौर कालिदास है। वस्तुओं को "यथा प्रदेश विनिवेश" का सौन्दर्य कहने वाला यह महाकवि प्रकृति में व्याप्त समन्वय को समेट कर एक अद्वितीय कलाकार बन गया है। सौन्दर्य को उसने कई रूपों में उतारा और कई रूपों में उभारा। कहना होगा कि वह सौन्दर्य, समाधि और समन्वय तीनों को एक समझने वाला स्रष्टा था, द्रष्टा था। रस और ध्वनि को एकत्र करके भारतीय साहित्य को एक अमूल्य देन का दाता कालिदास कुमारसम्भव और रघुवंश में आदर्श जीवन-व्यवस्था का एक आदर्श चित्रकार भी है। मानवीय भावनाओं के कोमल पक्षों का सूक्ष्म निरीक्षण अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय में मिलता है। मेघदूत में मनुष्य और प्रकृति एक हो गये हैं और सब जगह लालित्य वर्तमान है।

महाकवि कालिदास के जन्म के सम्बन्ध में निश्चित रूप में कुछ भी कहना अभी तक सम्भव नहीं हो सका है परन्तु यह निश्चित है कि वे विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। यह विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त थे अथवा किसी अन्य वंश के कोई पराक्रमी राजा थे इस सम्बन्ध में विद्वानों में मत-भेद है। बहुत सम्भव है कि विक्रमादित्य एक उपाधि रही हो जिसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से पूर्व भी कुछ राजाओं ने अपने लिए प्रयुक्त किया हो। हमारे देश के अनेक स्थानों पर यह प्रसिद्ध है कि परमार वंश के विक्रमादित्य जो प्रथम शताब्दी में हुए है, ने उज्जयनी में राज्य किया और विक्रमी संवत का आरम्भ किया। यह प्रायः अब सर्वमान्य मत है कि महाकवि कालिदास का समय निश्चित रूप से ई० प्रथम शताब्दी ही है।

Scanned with CamScanner

कालिदास के लिखे दो महाकाव्य कुमारसम्भव और रघुवंश विश्व साहित्य की अमूल्य निधि हैं। कुमार सम्भव में सत्रह सर्ग हैं। इनमें मुख्य रूप से शिवजी पार्वती का विवाह, कुमार कार्तिकेय का जन्म तथा तारकासुर के वध की कथा का वर्णन भावपूर्ण उदात्त तथा सजीव भाषा में हुआ है। रघुवंश में 19 सर्ग हैं। कवि ने इन सर्गों में सूर्य वंश के 29 प्रतापी राजाओं का यशोगान भावपूर्ण भाषा में किया है। इन राजाओं में रघु के चरित्र को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया गया है इसी लिए इस महाकाव्य का नाम रघुवंश रखा गया है। महाकवि के गीति-काव्यों में 'ऋतुसंहार' तथा 'मेघदूत' का प्रमुख स्थान है। कालिदास के नाटकों में 'विक्रमोर्वशीय' व 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' प्रसिद्ध हैं। विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा और उर्वशी की कथा का सुन्दर वर्णन हुआ है तथा अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला तथा दुष्यन्त की कथा को जिस सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है उसके कारण यह नाटक विश्वसाहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है।

कालिदास सरस्वती के वरद पुत्र थे। उनके काव्य में प्रकृति का वर्णन अद्वितीय ढंग से सम्पन्न हुआ है। हिमालय की सुरम्य गोद में बैठ कर उन्होंने हिमालय की महिमा का जिस प्रकार का विषद वर्णन किया है उसकी उपमा विश्व-साहित्य में नहीं मिलती।

ब्रह्मा से वरदान पाकर तारकासुर ने देवताओं को बहुत कष्ट दिया। उससे दुःखी होकर देवता ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने सुझाव दिया कि शिवजी का पार्वती से विवाह करा दिया जाए ताकि उनका पुत्र कार्तिकेय तारकासुर को मारे। ब्रह्मा ने कहा—मैंने ही तारकासुर को वर दिया है अतः "विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य छेत्तुमसाम्प्रतम्" अर्थात् स्वयं लगाए हुए विषवृक्ष को भी काटना अनुचित है। कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग में हिमालय की महिमा का अद्वितीय वर्णन मिलता है, यथा—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

उत्तर दिशा में देवता स्वरूप पर्वतों का राजा हिमालय है. वह पूर्व और पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट होकर पृथ्वी को मापने का मानदण्ड बन रहा है।

वे आगे लिखते हैं कि सब पर्वतों ने हिमालय को पृथ्वीरूपी गौ का बछड़ा बनाया और सुमेरु पर्वत को दूहने में दक्ष होने के कारण दोघी (दोग्धा) बने। इस प्रकार महाराज पृथु के बताये अनुसार पृथ्वीरूपी गाय को दूह कर अनेक प्रकार के उज्जवल रत्न और संजीवनी जैसी बहुमूल्य औषधियां प्राप्त की गईं।

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥

कवि ने हिमालय का मानवीकरण किया है और बताया है कि यज्ञ में सहायता करने के कारण स्वयं प्रजापति द्वारा शैलाधिपति के उच्च सिंहासन पर बैठ कर पर्वतराज

हिमालय ने अपने वंश की वृद्धि के विषय में विचार किया। हिमालय का विवाह मेनका से हुआ।

स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।
मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपं विधिनोपयेमे॥

हिमालय का प्रथम पुत्र मैनाक हुआ तथा उसकी छोटी पुत्री का नाम पार्वती हुआ। भारतीय परम्परा के अनुसार पुत्रोत्सव तो सभी मनाते हैं किन्तु पुत्री के जन्म पर जो अपूर्व उल्लास कवि ने कुमार-सम्भव में दिखाया है वह कवि की अपूर्व रचना शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। पार्वती द्वारा किए जाने वाले कठिन तप से रोकने के कारण 'उ हे वत्से मा मा कुरु' माता ने उसका नाम उमा रखा। कवि ने समाज की मर्यादा के सम्बन्ध में संकेत करते हुए लिखा है कि—

अयाचितारं नहि देवदेवमद्रिः सुतांग्राहयितुं शशाक।
अभ्यर्थनाभंगभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्य लम्बतेऽर्थे॥

अर्थात् हिमालय ने बिना प्रार्थना किए शिवजी को कन्या ग्रहण करने के लिए बुलाने का साहस नहीं किया क्योंकि सज्जन पुरुष प्रार्थना की अस्वीकृति के डर से अभीष्ट प्रयोजन के लिए भी उदासीनता धारण कर लेते हैं।

रघुवंश महाकाव्य में अज अपनी पत्नी इन्दुमति की मृत्यु पर विलाप करते हुए कहते हैं—

तवपोहितुमर्हसि प्रिय! प्रतिबोधेन विषादमाशु मे।
ज्वलितेन गुहागतं तमस्तुहिनाद्रेरिव नक्तमोषधिः॥

अर्थात् हे प्रिय! जैसे रात में चमकने वाली बूटियां अपने प्रकाश से हिमालय की अंधेरी गुफा में भी चान्दनी कर देती हैं वैसे ही तुम भी फिर से जाग कर मेरा दुःख दूर करो।

मेघदूत में यक्ष मेघ को अलकापुरी का मार्ग बताते हुए कहता है—

तस्माद्गच्छेरनु कनखलं शैल राजा वतीर्णां
जन्होः कन्यां सागरतनय स्वर्णसोपान पंक्तिम्।
गौरी वक्त्र भ्रुकुटि रचना या विहस्येव फेनैः
शम्भो केशग्रहणम् करोविन्दु लग्नोर्मिहस्ता॥

हे मेघ! फिर तुम कनखल के पास गिरिराज हिमालय से गिरती हुई और सगर के पुत्रों के स्वर्गारोहण करने के लिये सीढ़ी के समान, जन्हूकन्या गंगा जी की ओर जाना, जिसने पार्वती जी की त्यौरी चढ़ी देख कर मानो फेन रूपी हास्य करके ललाटस्थित चन्द्र तक अपने तरंग रूपी हाथ ऊंचे उठाकर शिव जी के बालों का जूड़ा पकड़ लिया।

Scanned with CamScanner

कालिदास संस्कृत कवियों में प्रकृति-चित्रण के महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट कवि हैं। मेघदूत में मेघ की अलकापुरी की यात्रा के सम्बन्ध में उनकी कल्पना ने अद्वितीय रूप धारण किया है। मान सरोवर को जाने वाले हंस मेघ के साथ-साथ अपनी चोंच में रास्ते के भोजन के लिए कोमल कमल-नाल के मृदुल दलों को दबाये हुए जा रहे हैं। मेघ थक कर पर्वत की चोटियों पर विश्राम के लिये रुकता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई मानव लम्बी यात्रा से थक कर चूर हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास के मानस में हिमालय के सौन्दर्य तथा गरिम का जो प्रभाव उत्पन्न हो गया था, उसी की अमिट छाप उसके सारे ग्रन्थों पर पड़ी है। सौन्दर्य के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।

अर्थात् क्षण-क्षण में जो रूप नवीनता को ग्रहण करता है वही रूप रमणीय है। वे कहते हैं कि—

अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्। एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणष्विवांक:॥

अर्थात् अनन्त रत्नों को उत्पन्न करने वाले हिमालय की वर्फ उसके सौन्दर्य में बाधक नहीं हुई। ठीक है जैसे चन्द्रमा की असंख्य किरणों में उसका कलंक छिप जाता है उसी प्रकार बहुत से गुणों में एक दोष भी छिप जाता है।

कालिदास का हिमालय तथा प्रकृति-वर्णन उसे हिमालय की तरह विशाल बना देता है तभी तो एक श्लोक में उसके सम्बन्ध में कहा गया है—.

पुरा कवीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदास:।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।

अर्थात् प्राचीन समय में कवियों की गणना का प्रसंग आने पर कालिदास का नाम सर्वप्रथम कनिष्ठिका अंगुली पर रखा गया। किन्तु कालिदास की बराबरी करने वाले अन्य किसी कवि के न होने के कारण दूसरी अंगुली पर किसी का नाम पड़ा ही नहीं इसीलिए इस अंगुली का नाम अनामिका पड़ गया।

ठीक ही तो कहा गया है कि—

जयति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा
नास्ति येषां यश: काये जरामरणजं भयम्॥

—हाऊस न० 11 ए,
रौड़ा सैक्टर, बिलासपुर (हि० प्र०)

हिमाचली कहावतों में बालक

—राजन्य जयसिंह

कथा है कि ब्रह्मा ने जब प्रथम बार सृष्टि का सृजन किया तो नारद ने अध्यात्म के उपदेश द्वारा समस्त जीवधारियों को मोहमाया से विरक्त करके आवागमन के बन्धन से मुक्त कर दिया। परिणामत: सृष्टि समाप्त हो गई। तब ब्रह्मा ने नारद को शापित कर पुन: जगत का सृजन किया। हिन्दू ग्रन्थों में प्रतिपादित जीवन के चार आश्रमों में गृहस्थ-आश्रम को इसी अभिप्राय से सर्वोत्तम माना गया है क्योंकि इससे 'जीवन चलता रहता है।' एक पहाड़ी लोकोक्ति है —'जेस घरे बच्चे नीं उन्दे से घर चन्दरा ओ।' यहां ऊपरदत्त कथन प्रकारों में एक भिन्नता स्पष्ट है। आर्ष और कृषक मस्तिष्क और उनके उत्पादन में भारी समानता होते हुए भी प्रथम में वैशिष्ट्य है। इसे अत्युक्ति भी नहीं कहा जा सकता। पहाड़ी ओखाणें में भी यद्यपि समान विचार अभिप्रेत हैं तो भी कथितव्य को श्रोता या पाठक तक पहुंचाने में गुरुता नहीं है। मंजी हुई कल्पना शक्ति, श्रोता या पाठक में आकर्षण उत्पन्न करने की ताकत और 'शिष्ट' विधि से कथ्य को प्रस्तुत करना हलबाही के लिए कठिन ही नहीं असम्भव भी है। यहां शिष्ट की शिष्टता और लोक के लोकत्व में अन्तर स्पष्ट है। इटली और स्पेन की मध्ययगीन संस्कृति पर टिप्पणी करते हुए ड्यूरेंट दम्पत्ति ने भी लिखा है कि, निर्धन कृषक के पास दिन भर विभिन्न कार्य करने के बाद "शाम आने पर कोई भी मांसपेशी चिन्तन के लिए शेष नहीं बचती थी। "किसान की जो दिनचर्या आज भी है, उसमें मस्तिष्कीय विकास के कम से कम अवसर होते हैं। सुख-चैन के बाद ही विचार-जागरण सम्भव होता है।

युवाओं को प्राथमिकता आधुनिक सभ्यता के आगमन के उपरान्त ही मिली। इससे पूर्व तो वृद्धों ने ही संस्कृति-निर्माण किया था, जो भूमिका आज सभ्यता-निर्माण में बुद्धिजीवी निभा रहे हैं, ग्राम्य-सामाज में यही कार्य वयोवृद्धों के माध्यम से सम्पन्न होता है। बाल और वृद्ध की महत्ता में यह भिन्नता दिखाने वाली कुछ लोकोक्तियां निम्न प्रकार से हैं—

'सौ याणे, एक सयाणा'। अर्थात् सौ अयाने (बच्चे) और एक सयाना एक समान होते हैं। 'याणा नीं कन्याणा'। अर्थात् बच्चे की बात पर कान न दो। 'याणा एकी आख्खी रा काणा।' अर्थात् बच्चा एक आंख से काना होता है। छोटू जा अथवा जेड़ा छोटू ओ, (क्रमश: बच्चे जैसा या जैसा बच्चा होता है) में भी लड़कपन की बौद्धिक अक्षमता को नखदर्पण में दिखाया गया है। यहां 'याणा' शब्द को स्पष्ट करना भी ठीक रहेगा। यह हिन्दी अयाना का पहाड़ी रूपान्तर है और सयाना शब्द के साथ भी चलता है। इसकी पहाड़ी में अभिधाशक्ति बच्चा है न कि अनुभवहीन, अनाड़ी व्यक्ति। एक लोकोक्ति में कहा गया है 'बेट्ठेया सयाणा अर खेलदा याणा सोएणा लगो।' अर्थात् गृह में बैठा वृद्ध और खेलता हुआ बच्चा सुन्दर लगता है। बालक्रीड़ा माता-पिता को आनन्दित करती हो, यह तो पहली नजर में स्पष्ट है पर वृद्ध का सौन्दर्य उसकी

Scanned with CamScanner

विचार-सामर्थ्य के कारण माना गया है । वृद्ध की बौद्धिक थाती का उपयोग विवाह, मृत्यु, परिवार और समाज के परस्पर सम्बन्धों बोवाई, गोड़ाई, रीति-रिवाजों, दवाओं और रोगों तथा जीवन के भूल भरे पेचीदा क्षणों और इन सब की सूक्ष्मता के लिए किया जाता है । ऋतु और उपज, निषिद्ध अवसरों (Taboos) एवं व्रतों-त्योहारों सम्बन्धी बातों का ध्यान रखना और शेष परिवार को सूचना या चेतावनी देना वृद्ध के कार्य होते हैं ।

एक पंजाबी कहावत है कि जब बेटी को मां के कपड़े पूरे होने लगें तो उसकी डांट-डपट बन्द कर देनी चाहिए । ऐसी ही एक पहाड़ी लोकोक्ति है—'जेबे पूता खे बाबा रे जोड़े पूरे ऊई जाओ तो तेसखे बोलणा छाड़ी देणा चाइयो ।' जब पुत्र को बाप के जूते पूरे हो जांए तो उसे ताड़ना छोड़ देना चाहिए । 'गोड्डे दे एट्ठे पूत, तेथा उबे जमदूत', (घुटने से नीचे पूत उससे ऊपर यमदूत) । इस लोकोक्ति में यौवन-पूर्वावस्था का उच्छृंखल, अनुभव-विहीन, आत्म विश्वास और उद्दंड स्वभाव मुखरित है । 'आई दाढ़ी, गल बगाड़ी, आइया मूछां, किसनूं पूछां', में भी ऐसे ही भाव अभिप्रेत हैं । यौवन पूर्वावस्था विद्वानों द्वारा वह अवस्था मानी गई है जब किशोर मूढ़ अवस्था से सभ्य अवस्था में प्रवेश करता है । इस काल तक विचार शक्ति, और कारण (Reasoning) की चेतना आ चुकी होती है । वह आर्थिक, घरेलू, आदि समस्त वातावरण को तर्क की दृष्टि से देखता है । वह स्वाभिमानी (Igocentric) हो जाता है । अतः पुरखों की पूंजी-स्वरूप ओखाणों द्वारा माता-पिता को चेताना कि इस अवस्था में पिलाई गई डांट कलह का कारण बन सकती है, आधुनिक बालमनोविज्ञानी नजरिए से भी उचित है ।

कुछ लोकोक्तियों में बालकों के बेचैन स्वभाव का चित्रण है । 'बच्चा अर बान्दर कदी चुप नीं बैठी सकदा ।' (बच्चा और वानर कभी चुप नहीं बैठ सकते) । 'बच्चे रे टूंड अर आथी री सूंड' कदी चुप नीं रौंदी । (बच्चे के हाथ और हाथी की सूंड कभी चुप नहीं रहते) । बालक के शारीरिक और मानसिक विकासकाल में पांच अवस्थाएं आती हैं । सेन्सरी, मोटर, मेमोरी, इमेजिनेशन और रीज़निंग । कान, आंख, नाक आदि 'सेंस आरगन्स' को साधने के बाद बालक शारीरिक आवश्यकता के कारण मांसपेशियों को साधता है । सर्वप्रथम वह सिर और हाथों की समीपवर्ती मांसपेशियों को उपयोगी बनाता है । शैशवकाल से लेकर किशोरावस्था तक उसके समूचे शरीर की मांस पेशियां क्षमतावृद्धि के साथ चेष्टाओं की मांग करती हैं । इन्हीं 'मोटर' वृत्तियों के कारण बालक क्रीड़ामग्न रहता है । । कठिन स्थानों और पेड़ों पर चढ़ता है, गिरते-पड़ते हुए दौड़ता है । आखिर उसे जीवन की मुसाफ़िरी भी तो करनी होती है । कुल मिलाकर वह स्वयं को कुशल यात्री के रूप में गढ़ता है । यही भाव उपरोक्त ओखाणों में निहित हैं ।

माता की सन्तान के प्रति अनन्त जिम्मेवारियों का भी कहावतों में दर्शन होता है । दूध पीते बालक को छोड़कर मां लम्बे समय तक बाहर नहीं जा सकती । अनिवार्य अवसरों पर वह दौड़-भाग करती हुई कोई जरूरी कार्य करने पहुंचती है और छूट मिलने पर तत्काल दौड़ी-दौड़ी लौट आती है । यही भाव चित्रित हैं : इन लोकोक्तियों में । 'केड़ा दूध पीन्दा छाडी रो आई री?' (कौन सा दूध पीता बच्चा छोड़कर आई हो?) 'केड़ा फालड़ू बीचे रा ए?' (कौन सा पोतड़े में रहने वाला बच्चा है ?) पर मां के

सम्बन्धों की भी सीमा है । कहा भी है—'माय भी बिना रोए दुध नीं पल्यान्दी (पिलाती) ।' अर्थात् अभीष्ट की प्राप्ति के लिए कुछ श्रम तो अनिवार्य है । बिना कष्ट सहे कुछ भी प्राप्त नहीं होता । लालन-पालन के नुस्खे भी लोकोक्तियां बने हैं । 'पराया दूध पी रो नगूरा ओ ।' पराया दूध पीकर निष्ठुर होता है । कोई पड़ौसिन दूध पिलाए तो बालक में मां के प्रति लगाव कम हो जाता है । सोना, दूध पीना, सुश्रुषा और लोरियां सुनना आदि अनेकों क्षण ऐसे हैं जो जननी और सन्तान में घनिष्टता की वृद्धि करते हैं । बच्चे अजनबी के पास जाने में झिझकते हैं पर चिर परिचित होने पर उसके पास आना-जाना प्रारम्भ कर देते हैं । एक अन्य लोकोक्ति में कहा गया है—'बच्चा अर कुत्ता तेथी जाओ जेती रोटी मिलो ।' (बच्चा और कुत्ता वहीं पहुंचते हैं जहां रोटी मिलती है) । एक उक्ति में मां से कहा गया है—'ऊक्खल पूत न जाय माय, काणी धी चंगी ।' मां ! कानी बेटी ही भली, पर ऊक्खल पूत को जन्म न देना । ऊक्खल अर्थात् मूढ़ और अल्हड़ ।

एक लोकोक्ति है —'दूध अर पूत कियां बेचणा? (दूध और पूत कैसे बेचें ?) यहां दूध की तुलना पुत्र से करके उसके हाट पर विक्रय को घिनौना कृत्य माना गया है । पर अब जमाना बदला है । बच्चे को परिवार और समाज में कितना प्यार उपलब्ध है यह भी यहां चित्रित है । एक लोकोक्ति यूं है—काला रे जम्मो भाऊ, समें रिआ जम्मो धीया ।' इसका अर्थ है—'अकाल पड़ने पर पुत्र और समां (अकाल का विपरीतार्थक) आने पर बेटियां जन्मती हैं ।' इसके पीछे क्या व्यावहारिकता और अनुभव हैं यह जांचने का अवसर सुलभ नहीं हुआ है । सम्भव है बेटियों को स्नेहवंचित न होने देने का प्रयास ही यहां किया गया हो । पुत्र जन्म अपेक्षाकृत अधिक खुशी का कारण माना जाता है । पर पुत्री को प्यार से वंचित रखना भी तो अनाचार है ।

पुत्र-प्राप्ति के पश्चात् उसे सहेजकर रखना छोटी समस्या नहीं होती । निर्धन किसान परिवारों के साधन ही कितने होते हैं ? अतः कहा गया है—'पेटड़ू या बेटड़ू' । या पेट ही पाला जा सकता है या बेटा ही । विवाह किस वय में हो, इस सम्बन्ध में भी साधनहीन, पिछड़े युग के, निर्धन पुरखे अनुभव-प्रसून छोड़ गये हैं । 'बचपणा रा कमाया दा अर सबेरका कमाया दा मुफ्ता रा ओ ।' बचपन का ब्याह और सबेरे की कमाई मुफ्त की होती है । किसान परिवारों के लिए पुत्र-विवाह का अर्थ होता है, बहू की प्राप्ति । यानि एक और कामगीर की प्राप्ति । यद्यपि भारत में बाल-विवाह के विरुद्ध कानून बने हैं पर वे अभी जनता द्वारा चरितार्थ नहीं किए जा रहे हैं । यूरोप में बालश्रम कानून 1802 में बना और 1822 तक ही अपनाया गया । ऐसा भी अनेकों प्रसंगों पर देखने में आया है कि कृषक जीवन की भारी दिनचर्या के कारण ही आज के बाल-विवाह प्रचलित हैं । एक और कामगीर के रूप में बहू के गृह-प्रवेश के साथ यदि शीघ्र पुत्र-प्राप्ति हो गई तो वह माता-पिता के जर्जरकाय होने से पूर्व ही जवान हो जाता है । इस प्रकार पिता को एक नौजवान दोस्त मिल जाता है । इधर माता पिता भी बेटी के यौवना होने से पूर्व उसे विदा करना चाहते हैं ।

बच्चा अबोधता के कारण दुस्साहसी होता है । पांचवें वर्ष तक ही बालक में भयभीत होने की वृत्ति उपजती है । इससे पूर्व वह हानि की संभावना को सोचने में अक्षम होता है । यही अनुभव इस लोकोक्ति में है—'बच्चे अर बाशा खे जे साप पकड़ाइयो तो बच्चा

Scanned with CamScanner

पकड़ी लौ पर बाशा नीं पकड़ी सकदा।' यानि बच्चे और बादशाह को यदि सांप पकड़ाएं तो बच्चा पकड़ लेता है पर बादशाह नहीं पकड़ सकता। एक कहावत मूलतः बच्चों को शिक्षा देने के लिए बनी होगी—"जो स्वांग लगाओ से आपणा ही मूंह बगाड़ो।' पर अब इसे व्यापक अर्थ में भी लिया जाता है। ग्राम्य–जगत् में बच्चों और स्त्रियों को अनाड़ी माना गया है। 'ज्वाणसा-छोटुआ रे बोले नीं लगियो।' (स्त्री बच्चों के कहे पर आचरण न करे)। यहां बच्चों के साथ स्त्री को भी जोड़ा गया है। परन्तु ग्रामों में यह व्यावहारिक भी है। जब तक ग्रामों में शतशः पुरुष शिक्षित नहीं होंगे तब तक वहां शिक्षित नारी को भी न्यायिक मान प्राप्त नहीं होगा। एक कहावत में बालकों का सहज भोलाभालापन दिखाया गया है—'छोटुआ रा क्या ठगणा?' अर्थात् बच्चों का क्या ठगना? रोने, झींखने पर किसान माता-पिता उसे गुड़ की डली, थोड़ा मक्खन, अखरोट, तिल या भुने दाने देकर मना लेते हैं।

अब के युवक रूप को प्राथमिकता न देकर पत्नी का शिक्षित और व्यवहार–कुशल होना पसन्द करते हैं। पहले तो देहात कन्या-शिक्षा का प्रतिरोध करते रहे पर अब माता-पिता बेटी को उतना पढ़ा लेना अनिवार्य समझते हैं कि वह पत्र लिख-पढ़ सके। आधुनिक शिक्षा–प्रसार का असर समाज में किस स्तर तक पहुंचा है, उसका भान होता है, प्रस्तुत लोकोक्ति से—'जनानी ब्याही होई, जमीन बणाई होई, ते मुन्नी पढ़ाई होई।' मुन्नी अर्थात् बिटिया। बेटी की शिक्षा को उपजाऊ, झाड़-झंखाड़ रहित और पत्थर रहित खेतों और विवाह के समान जीवन की उच्चस्तरीय महत्ताओं में स्थान मिल गया है। यह बात अलग है कि दृढ़ आर्थिक अवस्था के अभाव में उन्हें अधिक विकसित शिक्षा-उपलब्ध नहीं हो पाती।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हिमाचली क्षेत्र में प्रचलित कहावतों में बच्चों के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जाती है। उन्हें जहां अबोध अज्ञानी तथा अनुभवहीन कहा जाता है, वहां उनकी अचिन्त्य अवस्था की सराहना भी की गई है।

—ग्राम बमोत,
डाक घर रामपुर,
वाया सपाटू,
जिला सोलन (हि० प्र०)।

वि वि धा

हिमाचल पहाड़ी साहित्य सभा के तत्वाधान में सैनिक वीरों का भव्य अभिनन्दन समारोह

दिनांक: 19 जनवरी, 1975।

परोल (जिला हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश) में डा० यशवन्त सिंह परमार ने हिमाचल प्रदेश के पहले विकटोरिया क्रास विजेता की धर्मपत्नी श्रीमती गुरदेई को सभा की मुख्य पत्रिका हिमधारा के हिमाचल वीर अंक की प्रथम प्रति भेंट करके एक शानदार समारोह का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा कि हिमाचल प्रदेश के वीरों ने भारत में और विदेशों में अपनी वीरता की धाक बिठाई है। अतः उनका सम्मान एक सराहनीय पग है। उन्होंने कहा कि हिमाचल प्रदेश से इस समय साठ हजार के लगभग जवान सेना में हैं और 70 हजार भूतपूर्व सैनिक अपने ग्रामों में विकास कार्यों में रुचि ले रहे हैं। डा० परमार ने सेना में हिमाचल की ओर से हुए 1,043 शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने सैनिक परिवारों और अवकाश प्राप्त सैनिकों को दी जाने वाली सुविधाओं का उल्लेख किया। उन्होंने हिमाचल पहाड़ी साहित्य सभा की इस कार्य के लिए सराहना की।

हिमाचल वीर अंक के बारे में प्रो० नारायण चन्द पराशर, संसद सदस्य और हिमाचल पहाड़ी साहित्य सभा के महामन्त्री ने कहा कि पहाड़ी साहित्य सभा ने अपने प्रदेश को उत्कृष्ट वीरता का दर्पण प्रस्तुत किया है। मातृ–भाषा हिमाचली-पहाड़ी में संस्करण प्रकाशित करके साहित्य सभा ने जहां मातृ भाषा की सेवा करने का प्रयास किया है वहां अपने वीर शहीदों और वीरों का अभिनन्दन भी किया है। प्रो० पराशर ने कहा कि हिमाचल प्रदेश ने देश की रक्षा में अपना खून दिया है। उसकी 34 लाख की जनसंख्या में से 1043 शहीदों के शानदार बलिदान से यह सिद्ध होता है कि वीरता और बलिदान में हिमाचल प्रदेश सब प्रान्तों से आगे है। उन्होंने कहा कि हिमाचल की धरती को यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसने भारत का पहला परम वीर चक्र विजेता शहीद पैदा किया। 3 नवम्बर, 1947 के दिन श्रीनगर हवाई अड्डे की रक्षा करते हुए भारत माता के चरणों में अपनी बलि देने वाला मेजर सोमनाथ शर्मा, पालमपुर तहसील के डाढ ग्राम का निवासी था, जिसे स्वतन्त्र भारत का पहला परमवीर चक्र मिला। उसी वीर का छोटा भाई ब्रिगेडियर के रूप में मिजोरम (पूर्वोत्तर भारत) में देश द्रोहियों से जूझ रहा है। हिमाचल प्रदेश ने पंजाब, हरयाणा और राजस्थान को हरा

Scanned with CamScanner

भरा करने के लिए अपने खेत खलिहान डुबो दिये। त्याग और बलिदान का यह चित्र भारतवासियों को स्पष्ट रूप से समझना चाहिये। उन्होंने रेल मन्त्री श्री ललित नारायण मिश्र का विशष रूप से उल्लेख किया, जिन्होंने हिमाचल के महान बलिदान से प्रभावित होकर नंगल-तलवाड़ा रेल मार्ग के निर्माण कार्य का 22 दिसम्बर, 1974 को अम्ब के स्थान पर शुभारम्भ किया। प्रो0 पराशर ने कहा कि हिमाचल निवासी, श्री मिश्र के मार्ग पर चलते हुए देश के लिये पसीना बहायेंगे और आवश्यकता पड़ी तो खून भी देंगे। उन्होंने कहा कि इस समारोह के लिये परोल के स्थान को इसलिए चुना गया क्योंकि यहां वीर लाला का जन्म हुआ। हिमाचल वीर अंक का संक्षिप्त विवरण भी किया। इसमें 1,036 शहीदों की सूचि है और इसके साथ 300 से अधिक शहीदों, वीरता पदक विजेता सूरमाओं और प्रमुख भूतपूर्व सैनिकों के चित्र एवं संक्षिप्त जीवनियां हैं। अंक में सैनिकों के बारे में अनेक समस्याओं का उल्लेख है और उनके बारे में पहाड़ी में कवितायें, नाटक और महत्वपूर्ण लेख हैं। प्रो0 पराशर ने आशा व्यक्त की कि यह संस्करण सरकार का ध्यान भूतपूर्व सैनिकों, सैनिक परिवारों और वीर नारियों की ओर दिलायेगा। और उनसे भी अधिक उनके ग्रामों की ओर सरकार विशेष ध्यान देगी। प्रो0 नारायण चन्द पराशर ने परोल में सुरक्षा संग्रहालय स्थावित किए जाने की मांग की। उन्होंने समाज से वीरों का सत्कारऔर अभिनन्दन करने का अनुरोध किया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में हिमाचल प्रदेश के शिक्षा मन्त्री श्री देस राज महाजन ने हिमाचल पहाड़ी साहित्य सभा के इस शानदार कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि यह क्षेत्र धन्य है जिसने इतने शहीद और वीर उत्पन्न किये और यह भी सौभाग्य की बात है कि इसे प्रो0 नारायण चन्द पराशर जैसे सजग और प्रगतिशील संसद सदस्य मिला है जिसके मन में वीरों के प्रति आदर है और इस क्षेत्र के विकास के लिए तड़प है, यहां तक कि उन्होंने अपना निजी टेलीफोन भी इस क्षेत्र में भोरंज में लगवाया है। श्री महाजन ने सुजानपुर टीहरा में सैनिक स्कूल की स्थापना का भी उल्लेख किया। उन्होंने प्रदेश वासियों से अपने वीरों का सम्मान करने की अपील की। समारोह में भूतपूर्व सैनिकों ने भारी संख्या में भाग लिया। हिमाचल के एक मात्र जीवित विकटोरिया क्रास विजता श्री भण्डारी राम, ब्रिगेडियर मेहर सिंह, पद्मश्री चरण जीत सिंह, मेजर बेली राम, कप्तान भगत राम तथा अन्य प्रमुख भूतपूर्व सैनिकों ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश के संसद सदस्य श्री जगन्नाथ भारद्वाज, सूबेदार मेजर राम रखा, विधायक एवं अध्यक्ष ज़िला कांग्रेस कमेटी ऊना, श्री सीता राम शर्मा, विधायक एवं अध्यक्ष, ज़िला कांग्रेस कमेटी, बिलासपुर, श्री धर्म सिंह तथा श्री रमेश वर्मा, विधायक, ज़िला हमीरपुर, श्री प्रकाश चन्द, विधायक, जिला ऊना, श्री कुलदीप सिंह, विधायक, ज़िला बिलासपुर, श्री बाबू राम मण्डियाल, मुख्य संसदीय सचिव, श्री किशोरी लाल टाडू, संसदीय सचिव, श्री प्रेम चन्द वर्मा, अध्यक्ष ज़िला कांग्रेस कमेटी, हमीरपुर, कामरेड अमीं चन्द, भतपूर्व उपाध्यक्ष, हिमाचल प्रदेश विधान सभा तथा अन्य प्रतिनिधियों ने भारी संख्या में भाग लिया।

परोल हाई स्कूल के मुख्याध्यापक, स्टाफ तथा विद्यार्थियों की ओर से इस अवसर पर विशष सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। इस अवसर पर लगभग 15 हजार लोग इस भव्य समारोह में सम्मिलित हुए। नायक लाला को आज से 59 साल पहले 21 जनवरी, 1916 के दिन मैसोपोटोमिया में हन्ना के मोर्चे पर वीरता के लिये विक्टोरिया क्रास मिला था। समारोह के आरम्भ में स्थानीय ग्राम पंचायत की ओर से मुख्य मन्त्री की सेवा में एक सुन्दर अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया।

भारतीय भाषा संगम का उद्घाटन

बसंत (माघी) पूर्णिमा मंगलवार, दिनांक 25 फरवरी, 1975 के शुभ दिन पदम् विभूषण डा0 सुनीति कुमार चटर्जी, राष्ट्रीय प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, साहित्य एकादमी ने कांस्टीट्यूशन क्लब में भारतीय भाषा संगम का उद्घाटन किया। सभी भारतीय भाषाओं के हितों की रक्षा एवं उनकी प्रगति हेतू संगठित इस संस्था के उद्घाटन भाषण में सुनीति बाबू ने कहा कि भारतवर्ष में बोली जाने वाली सभी भाषाएं पूजनीय हैं और उन्हें प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उनकी विभिन्न क्षेत्रों में हो रही गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने की दिशा में संगम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और इससे राष्ट्रीय एकता को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इस एकता के लिए वर्तमान परिस्थितियों में उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के महत्व पर भी बल दिया है। उन्होंने कहा कि साहित्य एकादमी भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है परन्तु इसके साधन सीमित हैं। अतः वह भारतीय भाषा संगम की स्थापना का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि इसके मंच से सभी भारतवासियों को अपनी मातृभाषा और उससे भी बढ़कर अन्य भारतीय भाषाओं की उन्नति और विकास के लिए प्रयत्न करने का अवसर मिलेगा।

सुनीति बाबू जी का स्वागत करते हुए और संगम के उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए संगम के संयोजक प्रो0 नारायण चन्द पराशर, संसद सदस्य ने कहा कि संगम सभी भारतीय भाषाओं की रक्षा और उन्नति के लिए अपने संकल्प को विभिन्न भाषा-भाषी लोगों, संस्थाओं एवं उनके प्रतिनिधियों के सहयोग से पूरा करने का प्रयत्न करेगा। उन्होंने आशा व्यक्त की कि क्षेत्रीय भाषाओं के विकास से हिन्दी को भी समृद्ध होने का अवसर मिलेगा और यह विभिन्न भारतीय भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों को अपने बीच समा कर अपना विशाल राष्ट्रीय रूप धारण करेगी और सम्पर्क भाषा का स्थान प्राप्त करेगी। संगम मान्यता प्राप्त और मान्यता प्राप्त करने की इच्छुक सभी भारतीय भाषाओं की उन्नति में सहायक होगा। संगम अपने मंच पर और अपने संगठन में उन सभी व्यक्तियों का स्वागत करेगा जो भारतीय भाषाओं के विकास के लिए उदार दृष्टिकोण रखते हों और भारतीय भाषाओं के साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाना चाहते हों।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफिर संसद् सदस्य एवं प्रसिद्ध पंजाबी लेखक ने कहा कि प्रत्येक भारतवासी हिन्दी के विकास का स्वागत करेगा और इसे मान्यता देगा, यदि विभिन्न भारतीय भाषा-भाषियों को यह सन्तोष हो जाये कि हिन्दी उनकी मातृ भाषा के विकास में बाधक न होगी। ज्ञानी जी ने सुनीति बाबू को भारतीय भाषाओं का सबसे बड़ा विद्वान बताते हुए आशा व्यक्त की कि उनकी देख रेख में विभिन्न भारतीय भाषाओं और इनके बोलने वालों के मध्य सद्भावना एवं सहयोग स्थापित होंगे। उन्होंने कहा कि यह दुर्भाग्य की बात है कि राजनीति के क्षेत्र में कार्य करने वाले एवं साहित्य भाषा, शिक्षा, कला एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य

Scanned with CamScanner

करने वालों के मध्य एक बहुत बड़ी खाई है विशेषकर पुरानी पीढ़ी एवं युवा पीढ़ी के मध्य यह और अधिक गहरी हो गई है। इस खाई को अतिशीघ्र पूरा करके इन दोनों वर्गों के मध्य सम्पर्क स्थापित होना चाहिए। इसी से देश का लाभ होगा। समारोह की समाप्ति पर गुजराती एवं मराठी की लेखिका श्रीमती सुशीला आदिवारेरकर, संसद सदस्य ने गुजराती में दिये गये अपने भाषण में बसंत पूर्णिमा के शुभ दिन का श्रीगणेश हार्दिक स्वागत के साथ किया और कहा कि भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य एवं विकास के लिए यह अत्यन्त शुभ घड़ी है। इस अवसर पर श्रीमती प्रतिभा सिंह, संसद सदस्य, पुरुषोतम काकोडकर, संसद सदस्य एवं श्री गिरधर गोमांगों, संसद सदस्य, श्री जय विहारी लाल खाची, विधायक हिमाचल प्रदेश, श्री बंसी लाल, श्री राम प्रसाद कौशिक, श्री गुप्त, श्री शिशु आदि हिन्दी कवि और लेखक, विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, अध्यापक, लेखक और पत्रकार उपस्थित थे। केन्द्रीय विद्यालयों के अध्यापकों की अच्छी संख्या में उपस्थिति भी इस समारोह की विशेष झलक थी। इनमें श्री तेंजीन छाक दौर, श्री धनंजय मिश्र एवं श्री चतुर्वेदी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

* * *

शिवरात्रि– देवात्मा नटराज शिव

हिमाचल, काश्मीर और दक्षिण में मद्रास आदि क्षेत्रों में भगवान शिव की पूजा का महत्व रहा है। हिमाचल में शिवरात्रि का पर्व एक सांस्कृतिक पर्व है। इस प्रदेश के महासू क्षेत्र में इस का और भी अधिक महत्व है।

ललित कलाओं में नृत्यकला का विशेष महत्व है, विशेषतया भारतीय नृत्यकला का, क्योंकि इसमें संगीत, काव्य और नाट्य तीनों का संतुलन और समन्वय रहता है। नृत्य में सारा शरीर विचार का माध्यम बन जाता है। वह मूर्ति की तरह स्पष्ट और चित्र की तरह विवरणात्मक दीखने लगता है। इस तरह नृत्य जीवन की शक्तियों के सत्य की व्याख्या है।

नृत्य के अधिष्ठाता देवता शिव हैं। वे अज्ञान के संहारक और ज्ञान के उत्पादक हैं। ताण्डव नृत्य में शिव की दस भुजाएं उनके दिव्य-भाव की परिचायक है। यह नृत्य उन बन्धनों को काटता है, जो आत्मा को माया के साथ बांधे हुए हैं। जब ज्ञान की अग्नि अहंकार के कर्कट को जला देती है तभी माया के दोष समाप्त होते हैं।

ऐसा विश्वास है कि कैलाश पर्वत पर शिव का योगपरक संध्यानृत्य सौन्दर्य और

शांति फैलाता है। यह संध्या-नृत्य मानव में आत्म-विस्मरण की चेतना उत्पन्न करता है। इस नृत्य में शिव के व्यक्तित्व में दयामयी सौम्यता और शक्तिशाली उदारभाव का समन्वय होता हैं। समग्र जीवन और समूचे स्पन्दन के स्रोत शिव अपने नृत्य द्वारा प्राणियों को मोक्ष प्रदान करते हैं। नृत्य के समय में शिव के डमरू की ध्वनि माया में डूबे प्राणियों का उद्बोधन करती है। उन के भय दूर करके उन्हें दिव्य-प्रेम की शांति देती है।

प्राचीन भारत में मन्दिर संस्कृत विद्या और भारतीय ललित कलाओं के केन्द्र थे। संस्कृत का अध्ययन जैसे जैसे कम होता गया वैसे वैसे भारतीय धर्म के विचारों और दर्शन को आम जनता तक पहुंचने का कार्य ललित कलाओं ने अपनाया। धर्म की शिक्षाओं को सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाने के लिए कला के प्रतीक बने। नृत्यकला अपनी प्रिय लय से मोहक बन कर सभी ललित कलाओं का पोषण करती रही है। दुर्बोध और गूढ़ नैतिक रहस्यों को कला ने मूर्त रूप दिया। भाव पहले नृत्य द्वारा ही अभिव्यक्त हुए थे। ब्राह्मण, बौद्ध और जैन मूर्तिकला में नृत्यरत अप्सराओं के जो रूप व्यक्त हैं उनमें अपार लालित्य और लावण्य है।

भारतीय भित्ति-चित्रों और चित्रकला में भी नृत्य-कला के कई रूपों को व्यक्त किया गया है। रंगों के माध्यम से नृत्य के विवरण और भी अधिक स्पष्ट न होकर अभिव्यक्त हुए हैं। ताण्डव और लास्य दोनों प्रकार के नृत्य चित्रकला का विषय बने हैं। नृत्य के साथ राग-रागिनियों के श्रवण से श्रोता-चित्रकार के हृदय में जो भावना जागृत होती है उसे लघु चित्रों में सजीव ढंग से चित्रित किया गया है। कांगड़ा कलम और राजपूताना चित्रकला के विभिन्न रूपों में रासलीला नृत्य के अनेक दृश्य चित्रित हुए हैं।

कांस्य, ताम्र, काष्ठ वहाथीदान्त आदि में ढाल कर नृत्य कला की मूर्तियां बनी हैं। इनमें नृत्यरत शरीर का लयात्मक संतुलन, बाहों और पांवों की आसन-व्यवस्था एक गत्यात्मक सौम्य रेखा में रूप धारण करती है। इससे नर्तक और मूर्तिकार दोनों की आध्यात्मिक मनोदशा का पता लगता है। इन्हें मुद्राएं कहा गया है। ये मुद्राएं ही दिव्य-क्रियाएं हैं।

अतः नृत्यकला सभी ललित-कलाओं की प्रेरक रही है और सर्वाधिक जीवन्त और सजीव है। देवात्मा नटराज शिव नृत्यकला के अधिष्ठाता देवता रहे हैं। भारत में नृत्यकला और शिवपूजा का सांस्कृतिक महत्व रहा है।

—वरत् देवी

Scanned with CamScanner

28 जनवरी, 1975 को नालागढ़ में 'सोमसी' के विमोचन के अवसर पर श्री हरिचन्द पराशर, सचिव, अकादमी पत्रिका का प्रवेशाङ्क श्री लाल चन्द प्रार्थी, भाषा तथा संस्कृति मन्त्री, हिमाचल प्रदेश सरकार एवम् अध्यक्ष, हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी को भेंट करते हुए ।

हिमाचल प्रदेश की वास्तु-कला की वाङ्मय-सूची

—कु० भुवनेश्वरी राठौर

किसी विशेष देश या विषय के साहित्य या एक लेखक की किसी खास विचार-धारा से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकों की सूची को वाङ्मय सूची कहते हैं । इस में पुस्तकों का इतिहास और क्रमबद्ध विवरण, उस के लेखक, छपाई, प्रकाशन, संस्करण आदि का विवरण दिया जाता है।

यह अन्य पुस्तक-सूचियों से इस लिये भिन्न होती है कि यह अपने क्षेत्र के हस्त-लिखित या अन्य किसी रूप में प्रदर्शित लेखा की सूची होती है जो कि पुस्तकों, पत्रिकाओं, चित्रों, मानचित्रों, हस्तलिखित पोथियों तथा संचार के और माध्यमों को भी शामिल करती है । इस प्रकार वाङ्मय सूची का क्षेत्र बड़ा विस्तृत होता है ।

संसार या देशों के अस्तित्व से तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का जीवन बहुत छोटा है । अतः किसी एक व्यक्ति के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह इतिहास के किसी विशेष समय का ज्ञान व्यक्तिगत रूप से रखे । यही बात ज्ञान की विविध शाखाओं के सम्बन्ध में भी है । किसी विशेष विषय का अध्ययन करने के लिये पाठकगण को जिस सामग्री को आवश्यकता पड़ती है और जिसे वे पढ़ना चाहते हैं, वह ज्ञान का भण्डार विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी हुई पुस्तकों और लेखों में मिलता है ।

हिमाचल प्रदेश के विषय में ज्ञान तथा सूचना भी बहुत पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी है जिस का संकलन एक वाङ्मय सूची के रूप में करना बहुत आवश्यक है । इस क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश सचिवालय पुस्तकालय, भारती उच्च अध्ययन संस्थान शिमला, और हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय पुस्तकालय से तीन-चार व्यक्ति कार्य भी कर रहे हैं । इस प्रकार का कार्य हिमाचल से सम्बन्धित पुस्तकों के लिखने के लिये बहुत उपयोगी होगा ।

कला और संस्कृति की दृष्टि से हिमाचल एक सम्पन्न प्रदेश है । इन कला-कृतियों ने भारतीयों को ही नहीं अपितु विदेशियों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है । उन लोगों ने क्या देखा, क्या लिखा उस का संकलन यहां पर पहले वास्तु कला वाङ्मय सूची के रूप में पाठकगण की सुविधा के लिए दिया जाता है—

हिन्दी :

(1) किन्नर, खीम सिंह : कामरू का किला—हिमप्रस्थ—वर्ष 3, अंक 7, अक्तूबर 1957, पृष्ठ 21—33 ।

(2) कौशल, राम कृष्ण : हिमानियों के देश में—दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1967, कला, शिल्प, निर्माण और दस्तकारी, पृष्ठ 98—101 ।

(3) गुप्त, खेम राज : मरकुला मन्दिर (चम्बा) हिमप्रस्थ—वर्ष 10, अंक 10, जनवरी, 1964, पृ० 31—35, चित्र ।

Scanned with CamScanner

(4) गुप्त, खेम राज : मिन्धल जहां एक बेल से हल चलता है—हिमप्रस्थ—वर्ष..... अंक · · · , अप्रैल, 1966, पृष्ठ 56–57 ।

(5) गुप्त, खेम राज : मरकुला मन्दिर—सोमसी—प्रवेशांक—जनवरी, 1975, पृ0 84–87 ।

(6) गुप्त, खेम राज : हिमाचल की काशी: देवधरा चम्बा—हिमप्रस्थ—वर्ष...... अंक 1—2, अप्रैल-मई, 1964, पृ0 22–25, चित्र ।

(7) गोवर्धन सिंह : जुब्बल का ऐतिहासिक नगर हाटकोट–हिमप्रस्थ—वर्ष 8 अंक 11 फरवरी, 1963, पृ0 10—14 ।

(8) जसटा, हरिराम : भीमाकाली मन्दिर-महासू—हिमप्रस्थ—वर्ष 13 अंक 11 फरवरी, 1966, पृ030–31, 37 ।

(9) जुब्बल, भुवनेश्वरी : हिन्दु संस्कृति तथा कला का केन्द्र-हाटकोटी—हिमालय कल्पद्रुम, वर्ष 1, अंक 4, पृष्ठ 81–85 ।

(10) जोशी, देवी प्रसाद : मिंधल देवी मन्दिर—हिमप्रस्थ—वर्ष—17, अंक 8 नवम्बर, 1971, पृ0 37–40 ।

(11) पखरोहलवी, प्रेम : कुल्लू के प्रसिद्ध मन्दिर—हिमप्रस्थ —वर्ष 13, अंक 5, अगस्त, 1967, पृ0 42–46, चित्र ।

(12) पखरोहलवी, प्रेम : वैद्य नाथ (हिमाचल का प्राचीन शिव मन्दिर)—हिमप्रस्थ—वर्ष 16, अंक 11 फरवरी, 1970, पृ0 24–26 ।

(13) पनवार, चतर सिंह : भीमा काली मन्दिर—हिमप्रस्थ—वर्ष 1, अंक 12, मार्च, 1956,–पृष्ठ 6—7 ।

(14) पनवार, चतर सिंह : राजगढ़ का किला—हिमप्रस्थ—वर्ष 2, अंक 3, जून, 1956, पृ0 2—4, चित्र ।

(15) प्रकाश, एम0 : नृमुण्ड एक ऐतिहासिक विश्लेषण—हिमप्रस्थ—वर्ष 19, अंक 10, जनवरी, 1974, पृ0 69–71 ।

(16) प्रार्थी, लाल चन्द : कुलूत देश की कहानी कुल्लू, नील कमल प्रकाशन, 1972, बिजली महादेव का मन्दिर, पृ0 74 ।

(17) भगवती शरण सिंह : हिमनील, दिल्ली, राधाकमल प्रकाशन, 1969, पृ0 76—79 ।

(18) भटनागर, उमा : चामुंडा देवी का मंदिर (मिन्धल—पांगी-चम्बा)—हिमप्रस्थ—वर्ष 11, अंक 10 जनवरी, 1965, पृ0 14—15, चित्र ।

(19) रन्धावा, महेन्द्र सिंह : कांगड़ा : कला, देश और गीत–दिल्ली, साहित्य अकादमी, 1970 :—
   (1) बैजनाथ (मन्दिर) पृ0 60–65 ।
   (2) सुजानपुर (महल और मन्दिर) पृ0 74–81 ।
   (3) कांगड़ा (किला और मन्दिर) पृ0 94–102 ।
   (4) ज्वालामुखी पृ0 103–108 ।
   (5) नादौन (महल और मन्दिर) पृ0 109–118 ।

(20) रन्धावा, महेन्द्र सिंह : कुल्लू के लोक गीत, दिल्ली, अतरचन्द एण्ड सन्स, 1955, मन्दिर और उत्सवादि, पृ0 45–56, चित्र ।

(21) रणवीर, रणदेव : कांगड़ा की कलाकृतियां और स्मारक—हिमप्रस्थ—वर्ष 17, अंक 8, नवम्बर, 1971, पृष्ठ, 23–25 ।

(22) रनोट, हरभजन सिंह : नैना-देवी बिलासपुर की इष्ट—हिमप्रस्थ—वर्ष 9, अंक 5, अगस्त, 1963, पृ0 12–14, चित्र ।

(23) वैद्य, किशोरी लाल : मन्दिरों की नगरी मण्डी–हिमप्रस्थ—वर्ष 14, अंक 10, जनवरी, 1968, पृ0 51–55, चित्र ।

(24) शर्मा, जगदीश : दर्शनीय एवं शुषमामण्डित स्थल : गिरी गंगा—हिमकेसरी–वर्ष 13, अंक 31, जून 18, 1973 पृ0 7 ।

(25) शर्मा, आचार्य दिवाकर दत्त : हिमाचली वास्तुकला : परम्परा और शैली—सोमसी—प्रवेशांक, जनवरी, 1975, पृ0 7–23 ।

(26) शर्मा, शमी मन्दिरां री नगरी : चम्बा—हिमधारा—वर्ष 1, अंक 3–11 (1973), पृ0 29 ।

(27) शास्त्री, भगत राम : बणखंड से छतराड़ी—हिमप्रस्थ—वर्ष 14, अंक......... दिसम्बर, 1969, पृ0 43–45 ।

(28) संगत सिंह : हिमाचल प्रदेश की परम्परा : वास्तुकला—हिमप्रस्थ—वर्ष 18, अंक 6, सितम्बर, 1972, पृ0 18–21 ।

(30) सांकृत्यायन, राहुल : किन्नर देश, इलाहाबाद, किताब महल, 1957 ।
   (1) कोठी देवी, पृ0 188–220 ।
   (2) कामरू किला, पृ0 234–38 ।
   (3) भीमाकाली मन्दिर, पृ0 261–64 ।
   (4) निरत सूर्य मन्दिर, पृ0 277–79 ।

(31) हाण्डा, ओमचन्द : बिलासपुर के मन्दिर–हिमप्रस्थ—वर्ष 16, अंक 8, नवम्बर, 1970, पृ0 38–42, चित्र ।

English :

1. Ahir, D.C. Temples of Kanam, the pride of Himachal Pradesh—in—March of India. 79, No. 12, December, 1971. p. 44.

2. Anand, D. Temples of Chamba—in—Illustrated Weekly of India. 27th October, 1968 p. 21—22.

3. Anand, Mulk Raj. (ed.) — Marg: Himachal Heritage. Vol.XXIII. No. 2, March, 1972.
Contents: Architecture and Sculpture
P.4—16. *Illustrated*
(1) Masrur
(2) Baijnath
(3) Bajaura
(4) Brahmaur
(5) Niralh
(6) Kushal
(7) Chamba.

4. Anonymous — Historic temple of Lord Shiva (Baijnath Kangra)—in—Tourism and Travel. V.II. No.I, January, 1975, p. 11, illustrated.

5. Bala subramanyam V., — Vajreshwari Shrine at Kangra—in—Hindu-19th January, 1969. p.2, col 5.

6. Bhardwaja, C.L. — Temples of the stolen Vishnu—in—Times of India. 27th June, 1971, P. 9c.3.

7. Buck, Edward J. — Simla: Past and Present. Calcutta, Thacker Spink and Co., 1904 (*2nd* ed. published by the Times Press, Bombay, 1925).
Contents: *Native temples*
(1904 ed.) p. 185—195
(1925 ed.) p. 138—145.

8. Chanderverkar — *Hill temples Architecture*—in—32nd Indian Road Congress, Simla, Souvenir; October, 1969. p. 69—77, illustrated.

9. Chanderverkar — Temples and Shrines—in—Cultural Forum, V. 13, No. 3—4, July, 1971, p. 16—22.

10. Chetwode, Penelope. — If there's a temple at the top—in Statesman. 3rd October, 1971. C 3rd October, 1971. (C).

11. Chetwode, Penelope — Kulu: the End of the habitable world· London, John Murrary, 1972. 233 p. illustrated.
Contents: *Temple Architecture.*
p. 117—126, illustrated.

12. Chetwode, Penelope — *Temples of the Western Himalaya,* with drawings by John Nankivell—in—the Architectural Reveiew, (London) February, 1973 p. 132—138 illus.map.

13. Chetwode, Penelope — *Temples in Western Himalaya,*—in—Country Life: Summer Travel Number (London) January 11, 1973. p. 79—82. Col. illus. map

14. Chetwode, Penelope — *Temple Architecture in Kulu*—in—Journal of the Royal Society of Arts, October, 1968.

15. Coomaraswamy, Ananda K. — History of Indian and Indonesian Art, New York, Dover Publications, 1965. References about *early temples of Chamba, Kangra and Kulu*. p. 142—3.

16. Cumming, C.F. Gordon — In the Himalayas and on the Indian plains, London, Chatto and windus, 1886, 60 sp. skts.
Running references of hill temples and their sketches in upper Sutlej Valley, p. 238 onwards.

17. Cunningham, Alexander — Report for the year, 1872-73. Varanasi, Indological Book House (Reprint 1966) (Archaeological Survey of India series) V.5.
Contents: *Jalandhara* p. 145
Kot-Kangra p. 155
Jawalamukhi p. 169
Cheri p. 175
Kiragrama p. 177.
Asapuri p. 185

18. Cunningham, Alexr. — Report of a tour in the Punjab in 1878-79. Varanasi, Indological Book House, (Rept. 1970).
(Archaeological Survey of India series) r. 14.p.109—139.
Contents: *Chamba* p. 109
Mandi p. 119.
Kunindas p. 125

19. — Encyclopaedia of World Art. N.Y.MC. Graw-Hill, 1963. 15 vol.
Contents: Punjab and Himachal Pradesh Vol. 7. p. 897—900.
(1) *Chamba* p. 897.
(2) *Kangra* p. 900.
(3) *Bajaura,* Himachal Pradesh Shiva temple (Gupta School of) '7th—8th Century. AD., plate 142.
(4) *Masrar,* Himachal Pradesh, rock cut temple, dated, (Gupta School) 7th—8th Century A.D., plate 142.

20. French, J.C. — Kangra Architecture—in—Art and letters. V. 22 No. 1, 1948 p. 18—20.

21. Ferguson, James — History of Indian and Eastern Architecutre. Delhi, Munshi Ram Manoharlal, (Rept. 1967) 2 Vols.
Contents: *Architecture in tne Himalayas.* p.251-301. illus.

22. Francke, A.H. — Antiquities of Indian Tibet. Delhi, S. Chand and Co., (Rept. 1972)........(Archaeological Survey of India, New Imperial series Vol. L.) 2 Vols.
Contents: Volume one was first published by Government of India in 1913.

Scanned with CamScanner

Author describes some of *the temples of Upper Sutlej.*

23. Fraser, James Baillie — Journal of a tour through parts of the Snowy ranges of the Himalaya mountains and the sources of the rivers—Jumna and Ganges. London, Rodewell and Martin, 1820. 548 p. map. illus.
Contents: Author describes *temples and palaces architectures in Sirmur, Simla Hills and Upper Sutlej Valley.*

24. Goetz, Hermann — *Early Wooden temples of Chamba* Leiden, E.G. Brill, 1955. (Memoirs of the Kern Institute No. 1. series) 121 p. illus. map.

25. Goetz, Hermann — *Antiquities of Punjab Hill District of Chamba*—in—Marg, March 1957 p. 15—18. illus.

26. Gore, F.St. G. — Light and Shades of Hill life in Afghan and Hindu High lands of the Punjab. London, John Murray, 1895. (Rept. by Oriental Pub. 1972).
Contents: Numerous photographs of *Hill temples between Simla and Kulu Valley.*

27. Handa, O.C. — Temple Architecture of Bilaspur—in—Nalwari, 1970, 2 p. illus.

28. Harcourt, A.F.P. — Himalayan Districts of Kooloo, Lahoul and Spiti. London, W.H. Allen and Co., 1871.
Contents: Varieties of temples in Kulu Doongree temple, Nagar Castle, Thakoor's house at Gondla, carvings at Bajoora temple, Sculpture stone at Nagar, Sculpture at Jugutsookh, Carvings at Shamshee.

29. Himachal Pradesh, State Institute of Language & Culture. — Himachal Pradesh: Cultural Heritage. Simla, D.P.R., 1972 *Temples* 4—14 *illus.*

30. Jag Mohan — The Fort of Pangana in Himachal Pradesh —in—Folklore. V. 12. No. 7. July, 1971. p. 270-72.

31. Jubbal, Goberdhan Singh — Hat-Koti: Centre of Himalayan Culture—in—The Himachal Times (D.D.), Annual No. 1966, p. 21—23 illus.
Note.—Article deals with 8th, 9th Century Shikhara temples in Jubbal Valley.

32. Khandalaval, Karl. — Mughal influence of, on *Pahari Architecture*—in—Pahari Miniatures Painting. Bombay, New Book, Co., 1958. 409 p. illustrated. References at different pages.

33. Krishana Dev — Temples of North India. Delhi, National Book Trust, 1969.

References about *Masrur* and other temples.

34. Longhurst, A.H. — *Himalayan Architecture*—in—Journal of the Royal Institute of British Architecture· Volume XXXVII, 3rd series, 1930.

35. Madanjeet Singh — *Himalayan Art.* London, Macmillan, 1971. 287 p. illus.
Contents: (1) *Lahoul and Spiti* p. 99.

36. Mago — Art and Achitecture in the hills of Himachal Pradesh—in—Design. V. 15, No. 1, January, 1971, P. 31—38.

37. Majumdar, R.C. — History and Culture of the people of India: Struggle for Empire. Bombay, Bharatiya Vidya Bhavan, 1957.
Contents: *Architecture—Punjab Hill States.* p. 605, 663—66.

38. Man Mohan — History of Mandi State. Lahore, The Times Press, 1930.
Reference regarding *Pagoda temple of Prashar (Mandi) built in C.* 1346 *A.D.* at p. 12 & 21.
(2) 16th Century temples of *Mandi* p. 22-23.

39. Marshall, John — Masrur (Rock cut temples) Kangra—in—Annual Report of the Archaeological Survey of India. Part I, 1912-13. p. 27—29. 2 illustrations on plate XII.

40. Marshall, John — Masrur (Rock cut temple)—in—A.R. of A.S.I. Part I, 1914-15.—p. 3—4. 2 illustrations of temples on plate II.

41. Mittal, Jagdish — *Temple of Bashashr Mahadev (Kulu)*—in—Roop Lekha, V. 32. No. 1, July, 1961, p. 66—68, illus.

42. Moorcraft, Wm. and Trebeck, George. — Travels in the Himalayan Provinces of Hindustan and the Punjab in Ladakh and Kashmir from 1819-1825—(Rept. Delhi, Sagar Publications, 1971). 2 vols.
Contents: Volume-1. *Several references of Shikhara temples and Hill temples of Kangra and Kulu Valleys.*

43. Mundy (Gen) Godfery Charles. — Pen and Pencil Sketches in India: Journal of a tour in India. London, John Murray, 1832. 2 Vols. Illustrated.
Running references about the *temples and palaces of Simla Hill States princes.* Vol. I. p. 253—315.

44. Randhawa, M.S. — Travels in Western Himalayas. Delhi, Thomson Press, 1974.
Contents: Ambica Devi temple p. 35.
Asapuri temple p. 89
Baijnath p. 43, 92—94.
Fort and temple p. 39—40.
Goddess of Mandli p. 186—194.

Jain temple, p. 35
Kapila Muni temple, p. 191.
Lakshmi Devi temple, p. 35
Malana temple (Kulu), p. 189
Manu temple (Kulu), p. 189
Mahu Nag temple, p. 160
Naina Devi temple, p. 118
Prim Devi temple, p. 191
Raghunath temple, p. 226
Sacred Deodan, Water babis and Deobas p. 157—62.
Temple of the fire Goddes p. 41—46
Temple of the Lord and Physician 9th—10th Century Nagra temple p. 93-96.
Vajneshwari Devi temple p. 36—37
Vashist temple (Kulu) p. 176.

N.B.—Numerous illus. of Prill. and Indo-Aryan Temples.

45. Ranote, H.S. Naina Devi temple—in—Nalwari (Bilaspur) 1972. 2 p. illustrated.

46. Roerich, Suetoslov *Art in tne Kulu Valley*. Nagar (Kulu) 1967.

47. Shastri (Dr.) Hira Nand. Historical Document of Kulu—in—Archaeological Survey of India, Annual Report, 1907—08.
Reference: *Sanhya Devi temple at Jagat Sukh built by Maharaja Udhampal in 1428 A.D.* p. 268—276. illustrated.

48. Shastri (Dr.) H.N. *Ruined temple in tne Nurpur Fort*—in—A.S.I.R. 1905. p. 110—120. Illustrated.

49. Simpson, William *Architecture in the Himalayas*—in—Transaction of the Royal Institute of British Architecture, London, 1882—83. p. 65—80 and 5 illustrated pages.

50. Tapovanji Maharaj (Swami). Wandering in the Himalayas, tr. from Malayalam by T.N. Kesva Pillai. Madras, Chinmaya Publication Trust, 1960. XX, 269 p. maps
Contents: Jawalamukhi p. 99 Manikarnika and Vasishta p. 106.
Thrilokee Nathan p. 131—132.

51. Thomas, George Powell Views of Simla. London, Dickinson & Co., 1848.
Contents: *Hill Architecture (Sacred), Architecture (Domestic).*

52. Vaidya, K. L. *Hill Architecture*—in—Patriot, Magazine Section, 20th October, 1974.

53. Van Der Sleen, W.G.N. Four months' Camping in the Himalaya. tr. from the Dutch by M.W. Haper. London, Philip Allen and Co., 1929. 213 p. Illustrated,

Refernce: (1) *8th Century A.D. Shikhera style sun temple at Nirat in tne Upper Sutlej Valley* p. 45.
(2) 2 photographs of the *Sun temple* at pages 45 and 54.
(3) The temple at Paunda p. 71.
(4) The Door at the *temple* at *Sarahan* (Bhima Kali) p. 125.
(5) A Guardian of the temple P. 172.
(6) *Temple at Kulu* p. 172.

54. Vogel, J. Ph. Antiquities of Chamba State: Part I, Calcutta, Suptd. Govt. Printing, 1911 (Archaeological Survey of India, New Imperial Series XXXVI). 208 p. illustrated map

55. Vogel J. Ph. *Hill temples of the Western Himalayas*—in—Indian Art and letters, New series, Vol. XX. No. 1.

56. Vogel J. Ph. Remnants in the Kangra Valley—in—Marg, March, 1957. p. 19—22, illstrated.

57. Vogel, J. Ph. The *temple of Mahadeva at Bajaura, Kulu*—in—A.S.I.R., 1909-10. Calcutta, 1904. pages, 16—24. illsu trated.

GOVERNMENT PUBLICATIONS

GAZETTEERS

58. Punjab Government Punjab States Gazetteer, Vol. XXIIA. *Chamba State*, 1904, Lahore, Civil and and Military Gazette, 1910.
Contents: *Archaeology-Monuments*, spired temples—Temples of Chamba, Temples at Brahmour—Temple at Saho-Temple at Udaipur, Temple at Udaipur-Triloknath. Hill temple-Oldest Devi temples. Lakhshavi temple at Brahmaour—Shakti temple at Chhatrari, Mir kula temple at Lahaul, Mirkula temple—Chamunda temple at Devi Kothi—Foot-prints pillars. pp. 41-48.

59. Negi, T.S. ed. Himachal Pradesh District Gazetteer, *Chamba* Simla, H.P. Government Press, 1963.
Contents: Archaeology (Mostly deals with with temples and architecture) p. 61—79.

60. Punjab Government Punjab District Gazetteers: Vol. VII Part A: *Kangra district* 1924—25 Lahore, Supdt., Government Printing, 1926.
Contents: Places of Interest and *Archaeology* pp. 487-509.

Scanned with CamScanner

61. Punjab Government — Punjab District Gazetteers, Volume XXXA: *Kangra district*, Parts II, *Kulu* and *Saraj*, Part III, *Lahaul* and *Spiti* Part IV, 1917 Lahore, Suptd. Government Printing, 1918. Contents: *Archaeology, Kulu p.* 36-42, *Lanaul* p. 191, *Temple in Outer Seraj* illustration at p. 172

62. Punjab Government — Punjab States Gazetteers, Vol XII A: *Mandi State*.. 1904. Lahore, Civil and Military Gazette, 1908. Contents: *Places of Worship* p. 39-41.

63. Emerson (Comp.) — Punjab Gazetteers: *Mandi State* 1920. Lahore, Supdt. Government Printing, 1920. Contents: Chapter 1. Sec. B. *Archaeology*, p. 17—20. (Describes temples, Riwalsar, Triloknath, Panchavaktra temple, Normal style of architecture, temple of Bhutnath, Temple of Aradhnari).

64. Beotra, B.R. (Com.) — Gazetteer of the *Suket State*. Calcutta, Central Publication Branch, 1927. Contents: *Archaeology*. Narsingh Temple, Temple of Mahadeo, Jagannath's temple, The Suraj Kund temple.

65. Punjab Government — Punjab States Gazetteer, Volume VIII, *Simla Hill States* 1910. Lahore, Civil and Military Gazette, 1911. Contents: *Temples p. 26 temple establishment*, p. 27 *The Sarahan temple* (Bhima Kali), p. 27.

66. Punjab Government — Punjab district Gazetteers, Volume VIII A: *Simla district* 1904. Lahore, Civil and Military Gazette, 1908. Contents: *Antiquities p.* 19, (describes some *historical temples*).

67. Punjab Government — Sirmur State Gazetteer, Part A, 1904. Lahore, Punjab Government Press, 1907. Contents: Temples at Jamlu, Temple at at Dogana, Temple at Mahasu p. 40—41.

CENSUS REPORTS

68. H.P. Supdt. Census Operations. — Census of India 1961 Vol. XX, Himachal Pradesh; Part IV, *Housing Establishments*. Delhi, Manager of Publication, 1965. 391 p. illustrated maps. (Describes *residential* as well as *temple architecture* in Himachal Pradesh. There are several photographs of *important temples*).

69. H.P. Supdt. Census Operations. — Census of India, 1961: Vol V., Himachal Pradesh, Part VII B, Fairs and Festivals. Delhi, Manager of Publication, 1967. 437 p. illustrated map. References about temples.

70. H.P. Supdt. Census Operations. — Census of India 1961: Vol XX—Part-No.—1-34, Himachal Pradesh: A Village Survey of 33 Villages Delhi, Manager of publication, 1965.

N.B.—List of Monographs.

CHAMBA DISTRICT:

(1) Chatrari, Chamba tehsil.
(2) Devi Kothi, Churah tehsil.
(3) Hatli, Bhattiyat tehsil.
(4) Kupha, Parmas, Pangi tehsil.
(5) Lakhar Mandi, Bhatiyat tehsil.
(6) Maingal, Chamba tehsil.

MANDI DISTRICT:

(1) Bir, Mandi Sadar tehsil.
(2) Chauntra, Joginder Nagar tehsil.
(3) Kot, Sarkaghat Tehsil.
(4) Nalag, Sundernagar tehsil
(5) Pangana, Karsog tehsil.
(6) Rewalsar, Mandi tehsil

BILASPUR DISTRICT:

(1) Dari and Dabhla, Ghumarwin tehsil.
(2) Deoli, Sadar tehsil.

MAHASU DISTRICT:

(Now Simla and Solan districts)
(1) Basal, Solan tehsil.
(2) Batal, Arki tehsil.
(3) Chaunri, Kasumpti tehsil.
(4) Choupal, Choupal tehsil.
(5) Chirgaon, Rohru tehsil
(6) Delath, Rampur tehsil.
(7) Dodra and Kawar, Rohru tehsil.
(8) Gijari, Theog tehsil.
(9) Purag, Kotkhai sub-tehsil.
(10) Shakrori, Suni sub-tehsil.
(11) Shatla, Kumarsain sub-tehsil.

SIRMUR DISTRICT:

(1) Kamrao, Paonta tehsil.
(2) Kolar, Paonta tehsil.
(3) Mangarh, Pachhad tehsil.
(4) Moginand, Nahan tehsil
(5) Rajana, Rainuka tehsil.

Scanned with CamScanner

KINNAUR DISTRICT:

(1) Kanum, Pooh-Sub-Division.
(2) Kothi, Kalpa Sub-Division.
(3) Nichar, Nachar Sub-Division.

All these monographs deal in one way or the other with the Village temples in pre 1966 Himachal Pradesh.

71. Punjab, Directorate of Public Relations. — Kulu: The happy Valley. Chandigarh, Directorate of Pub. Rel. 1956- 140 p. illustrated maps. (References about Kulu temples).

ADMINISTRATION REPORT

Punjab Government — Report on the administration of the Punjab and its dependencies, Lahore, Supdt. Government Printing (Different years).

Contents: Chapter VIII.

Archaeology	
1913-14	p. 71
1914-15	p. 83
1915-16	p. 78
1916-17	p. 75
1917-18	p.—
1918-19	p.—
1919-20	p.—

(Deals with temples in Kangra and Kulu Valleys).

गतिविधियां——

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी द्वारा लेखकों, रचयिताओं और कवियों की रचना-क्रियाओं को प्रोत्साहन देने की योजनाएं——

हिमाचल कला, संस्कृति-भाषा अकादमी अक्तूबर, 1972 में उद्घाटन के शीघ्र पश्चात् से ही लेखकों, रचयिताओं और कवियों की रचना-क्रियाओं को उपवृहित करने के प्रयोजन से विभिन्न प्रोत्साहन-योजनाएं संचालित करने का विचार बनाए हुए है। उनमें से कुछ उल्लेख सामान्य जानकारी देने की गरज से असंगत नहीं होगा ।

(क) प्रकाशनार्थ प्रोत्साहन

हिमाचल प्रदेश के उदीयमान लेखकों को अपनी पुस्तकों को प्रकाशित करवाने के लिए दिक्कत महसूस हो रही थी, विशेषत: पहाड़ी भाषा में लिखने वाले लेखकों के लिए, क्योंकि प्रकाशक यह समझते थे कि वाचन-विक्रय-क्षेत्र कम होगा। इसी प्रकार की दिक्कतों को ध्यान में रखते हुए अकादमी ने प्रकाशनार्थ प्रोत्साहन योजना चलाई। इसके अन्तर्गत पहाड़ी भाषा में लिखित लगभग सभी प्रकार के हस्तलिखित एवं हिन्दी, संस्कृत, उर्दू आदि में ऐसे हस्तलिखित ग्रन्थ जिनमें हिमाचल-जन-जीवन, संस्कृति-कला आदि का स्पष्ट चित्रण हो लेखकों द्वारा अकादमी को संवीक्षार्थ भेजे जाते हैं, अकादमी विद्वानों से रिव्यु करवा कर उनके पंचाट को दृष्टिगत रख कर निर्णय करती है कि किसके रचयिता को कितनी वित्तीय सहायता दी जाए। उसकी सूचना उस रचयिता को दी जाती है और फिर वह रचयिता पुस्तक को प्रकाशित करवाता है और प्रकाशित हो जाने के पश्चात् स्वीकृत वितीय सहायता रचयिता को दी जाती है। जुलाई, 1973 में आठ रचयिताओं को कुल 4200/-रकम की सहायता मंजूर की गई थी और जुलाई, 1974 में सात (7) रचयिताओं को कुल 10300/-रकम की सहायता स्वीकृत की गई थी। 31 दिसम्बर, 1974 तक ऐसे तीन रचयिताओं ने अपनी पुस्तकें छपवाई और उन्हें पूर्व-स्वीकृत कुल 1700/- की रकम दी गई ।

(ख) हिमाचली लेखकों की पुस्तकों की प्रसार-योजना

हिमाचली लेखकों की पुस्तकों को देश के ऐसे प्रसिद्ध विद्वानों और संस्थाओं, जो हिमाचल के लेखन की जानकारी प्राप्त करने में रुचि रखते हों के पास भेजने

की ग़रज से अकादमी न यह योजनां प्रचलित की हैं। इस के अन्तर्गत आवश्यक अवलोकन के पश्चात् हिमाचल के लेखकों की पुस्तकों की पच्चीस पच्चीस प्रतियां प्रसारार्थ खरीदी जाती हैं। 31 दिसम्बर, 1974 तक 34 लेखकों की इस योजना के अन्तर्गत पुस्तकें खरीदी गई हैं।

(ग) मानक-पुस्तकों की थोक खरीद :

प्रदेश के विद्वानों द्वारा मानक-लेखन और अनुसंधान को प्रोत्साहित करने और उसे प्रकाशित करने, करवाने के उद्देश्य से अकादमी ने यह योजना चलाई है। इस के अन्तर्गत अनुमोदित मानक पुस्तकों की अढ़ाई हजार रूपये के मूल्य की प्रतियां थोक खरीद की जाएंगी। जुलाई, 1974 में अकादमी के अधिशाली निकाय ने पांच पुस्तकें अनुमोदित की हैं, जिनकी खरीद के लिए आवश्यक पग उठाए जा रहे हैं।

(घ) अकादमी द्वारा संग्रह-प्रकाशन :

विभिन्न रचयिताओं से उनके लेखन प्राप्त करके विषयवार चयनिका बनाकर संग्रह-प्रकाशन अकादमी की अन्य स्कीम है। इसके अन्तर्गत 'पहाड़ी लोक रामायण' पुस्तक का अगस्त, 1974 में प्रकाशन-उपरान्त विमोचन चम्बा में किया गया था। इसी लड़ी में हिन्दी, पहाड़ी, संस्कृत और उर्दू के अलग अलग काव्य-संकलन प्रकाशित करने के लिए सामग्री संगृहीत की गई है। 'हिमाचल की ललित कलाएं' पुस्तक का संयोजन भी विचाराधीन है।

(ङ) संगोष्ठियां और सम्मेलन :

विषयों की वस्तुनिष्ठ सुस्पष्टि और उदीयमान लेखकों की विचार-धाराओं को अनुभवी लेखकों की सुलझी हुई विचारधारा के साथ सामयिक करने के प्रयोजन से संगोष्ठियां और सम्मेलन करवाए जाते हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका 'सोमसी' कला, संस्कृति, भाषा क्षेत्र के लेखकों को एक मंच प्रदान करेगी। आम आदमी की कलात्मक बोध-वृत्ति में भी कुछ समृद्धि होगी।

(छ) अकादमी के पुस्तकाल्य मे पहाड़ी अनुभाग :

अकादमी के पुस्तकालय में एक पहाड़ी अनुभाग स्थापित किया जा रहा है। इसमें पहाड़ी भाषा में लिखी पुस्तकें, हिमाचल प्रदेश के लेखकों द्वारा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी की पुस्तकें तथा हिमाचल प्रदेश के जन जीवन, प्रकृति संस्कृति पर अन्य पुस्तकें संदर्भ बनाकर रखी जाएंगी।

लेखक, रचयिता और कवि समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के अभिभावक होते हैं। उनका उचित ध्यान रखना और उचित आदर एवं प्रोत्साहन देना समाज का एक सांस्कृतिक कर्तव्य है।

—सचिव

BOOKS

by

Himachali Writers

We are introducing this column for the general information of the readers. The medium may be Hindi, Pahari or English according to the Language of the Book. Communication of information is the aim and not any critical review. Adding any back-ground knowledge concerning the subject will not mean discourtesy to the writers.— *Editor..*

The perspective of the thesis 'The Polyandry in the Himalayas' by Dr. Y. S. Parmar.

The subject of the book being of anthorpological nature requires that the readers may either be scholars of the comparative anthropology or should have sufficient apperception mass in the history of human civilization, otherwise he is likely to detest the content and controvert the issue. The Prime Minister, Mrs. Indira Gandhi has observed in her foreword of the Book, "Dr. Y. S. Parmar's book is a commendable effort in this direction. Polyandry is a subject of much ill-informed comment. Dr. Pramar has rightly pointed out that there is usually some econommic reason for a social custom." Dr. S. C. Dube, in his introduction of the book states, "The custom has its sanction in mythology and legend. Draupadi even though she was shared by the Five Pandava brothers, is even to-day the embodiment of virtue and chastity for the Hindu women". The author himself states in the Preface of the book that the book presents a diachronic study and the ethnographic content of the book relates to the social perspective of the late thirties.

Everything in the world is not meant for everybody and every book has a certain definite idea for the definite reading constituency. The total Gestault of the book is social

Scanned with CamScanner

anthropology. The social architects and social scientists are seized of the problem of the real warp and woof of the society in the geographical perspective. The book aims at disclosing that the basic problem of living and surviving in certain geographical conditions generates the phenomenon of various social customs. The changes in the earth as home of man brings about changes in the ways and mores of living. The book is basically for those who have developed scientific approach in the anthropological subjects. Some of such common readers who are obsessed by a latent lack of historical wisdom may not perhaps be able to catch the substance. The chapters II and V relating to Polyandrous Castes and Fraternal Polyandry show the real theme. There are also references in the book which clearly show that this custom is only limited to certain tracts and even there by certain groups of people not as a luxury but as necessity from a natural shortage of woman at that time. It is worth knowing that marital relationship within Fraternal Polyandry are strictly safeguarded and are so regulated that the women in actual fact has but one husband at a time.

Male-female relation in the human civilization have developed with the economic structure. Man and nature inter-acted each other. Relation of man and land influenced the relationship of man and man. The productivity of land and the creativity of female seemed to the primitive man to have a parallelism. Just as oblique is defined with reference to vertical so female came to be defined with reference to male. In the direct conflict with nature he who could risk became higher and he who could not risk became lower. The peculiar physiology of women gave to her a distinct function of retaining and repeating life as opposed to male's function of expanding and constructing life's activities. The first tillers of the hard soil of the land were compelled by the land produce to make their own laws and mores. With the rise of the concept of Personal property, virginity and monogamy were demanded. Woman came to be considered to be an idea in place of an object. Panthesilea became more splendid than Cinderella.

The author has elucidated that the change in the economic structure has been the cause for the change of the man-woman relations. Woman in the Hills has always been the equal companion of the man. She was never scorned too much, was never respected too much and she was never considered as inauspicious object The Hillmen never viewed her as a temple built over a Sewer. Woman was considered neither a slave nor a prize. Hillman did not preside over her as a sovereign over a liage. The relationship was more or less on equal footing. The polyandrous castes, the polyandrous areas and the fraternal polyandry is the trimerous upon which this custom remained mummified. The Reet custom saved the woman from perpetual servitude. She was not a clay in man's hands. She could aim at having mother's grandeur without wifely servitude. In order to appreciate an anthropological subject like this, the reader must recognise the basic fact that woman is intermediary between nature and man. She is other, other than herself and even other than what is expected of her. A nature elevated to the transparency of consciousness, she has radiated peace, order and Tranquility. Her healing hands have laved the humanity's brow. She and her life are not to be defined with reference to male.

The universal male-female relations have evolved in man-woman specific responsibility through a long span of of historical wisdom. The avoidance of second variant has, no doubt, been kept a realizable ideal. The great thinkers in the hoary past like Satya Ketu, and Manu the great Hindu Lawgiver have pondered over this essential nature and necessity of humanity. In certain situations with strict rules and regulations Niyoga, a sort of limited fraternal polyandry within gotra of Blood and Vidya was allowed. That permission of the great Hindu Lawgivers entered into the mythic consciousness of the Praja and the people residing in farflung areas gave to it a situational operation. A theme on Niyoga does not amount to insult to the sacred Hindu books because that was aimed at regulating the man-woman relations. When we speak of Niyoga, we do not mean that all the Hindus had been practising it in the

past. When we speak of Fraternal Polyandry in certain tract by certain groups, we do not mean that all the people in that tract had been practising it in the past. Both the Niyoga and Fraternal Polyandry are situational and hence historical. The scientific readers do not react to these subjects simply because of some present or past taboos.

This is a research type book in the field of Social Sciences. The Writer is the Scholar Chief Minister of Himachal Pradesh. The book has been nicely printed by the Vikas Publishing House, Delhi.

—H. C. Parashar

SOMSI

Declaration under clause 19-D of the Press and Registration of Books Act, 1867 as modified in 1956.

FORM IV

(*See* Rule 8)

1. Place of publication	..	Simla.
2. Periodicity of its publication	..	Quarterly.
3. Printer's Name	..	Shri K. C. Rajput.
Nationality	..	Indian.
Address	..	Deputy Controller, Printing and Stationery, Himachal Pradesh, Simla-3.
4. Publisher's Name	..	Dr. Bansi Ram Sharma.
Nationality	..	Indian
Address	..	Research Officer, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Pari Mahal, Simla-9.
5. Editor's Name	..	Dr. Bansi Ram Sharma.
Nationality	..	Indian.
Address	..	Research Officer, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Pari Mahal, Simla-9.

I, Dr. Bansi Ram Sharma, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dr. BANSI RAM SHARMA

Scanned with CamScanner

रजिस्टर्ड नं० एस०एम० 26

आर० एन० 28271/75

निदेशक, शिक्षा विभाग हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क इडीएन-एच(8)-6(3)1/75, दिनांक 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, परिमहल, शिमला-9 द्वारा प्रसारित तथा उपनियन्त्रक मुद्रण तथा लेखन सामग्री, हिमाचल प्रदेश, शिमला-3 द्वारा मुद्रित।

Scanned with CamScanner